भारतीय लोक कथाएँ

२

श्री पहाड़ी

हिमांचल प्रकाशन
४२, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद२११००२

हिमांचल प्रकाशन
४२, बलरामपुर हाउस,
इलाहाबाद-२ द्वारा प्रकाशित

●

द्वितीय संस्करण : १९८५

●

© पहाड़ी

●

मुद्रक
पर्वतीय मुद्रणालय
१८, राय राम चरन दास रोड,
इलाहाबाद-२ द्वारा मुद्रित

मूल्य :
८ रुपये

भूमिका

इस संग्रह में असम, आंध्र, केरल, मैसूर, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात, काश्मीर, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश; इन १२ प्रदेशों की लोक कथाओं का संकलन तथा संपादन किया गया है।

हम लोक कथाओं में लोक-मंगल की भावना के साथ-साथ अपने प्राचीन समाज का धर्म, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, आचार-विचार, विधि-निषेध आदि कई मान्यताएँ पाते हैं। इनमें हिमालय पर्वत से लेकर समुद्र तट तक के निवासियों का उल्लासपूर्ण जीवन मिलता है। इनके द्वारा हमारे देश की सांस्कृतिक एकता दृढ़ हुई है। ये हमें देश की सुरक्षा, आत्मनिर्भरता, देश-भक्ति, वीरता, साहस, त्याग, कर्त्तव्य-परायणता आदि सभी मानवीय गुणों की शिक्षा देती हैं।

मैंने कथाओं को सुबोध, सरल, और रोचक शैली में प्रादेशिक भूगोल और इतिहास का वातावरण देकर सजीव बनाया है, जिससे कि इनको पढ़ कर हमारे किशोर जीवन, समाज और भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान बनें।

पहाड़ी

४२, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद-२
१५ अगस्त, १६८५

सूची

●

१. असम : ज्ञान की महिमा : ५
२. अवधी : सत्य की कसौटी : १३
३. उड़िया : शिल्पी की देन : २२
४. कन्नड़ी : *मानवता की विजय* : २९
५. कश्मीरी : कर्त्तव्य पालन : ३८
६. गुजराती : अहंकार से पतन : ४८
७. तमिल : त्याग की भावना : ५६
८. तेलंगी : विधाता की हार : ६३
९. महाराष्ट्र : भूल का निवारण : ७२
१०. मलियालम : बुद्धि की परख : ७७
११. बंगाली : नेकी का फल : ८८
१२. बुन्देलखंडी : मानवीय गुण : ९९

● ●

मनीश ओझा को

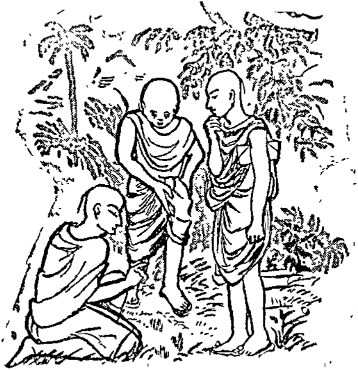

ज्ञान की महिमा

प्राचीन काल में वाल्मीकि, कण्व, सांदीपन आदि मुनियों के आश्रम वनों में थे। वहीं ब्रह्मचारी प्रायः अपने गुरू के पास रह कर शिक्षा प्राप्त करते थे। शिष्य गुरु के घर पर जाकर उसी परिवार का सदस्य बन जाता और वहाँ पुत्र के समान रहता था।

आगे भारतवर्ष में तक्षशिला, नालंदा वल्लभी आदि स्थान पर शिक्षा के बड़े-बड़े केन्द्रों की स्थापना हो गई। तक्षशिला चारों वेदों तथा अठारह शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। नालंद में बौद्ध वाङ्मय के अध्ययन की व्यवस्था के साथ-साथ तर्कशास्त्र व्याकरण, चिकित्सा आदि विषयों के अतिरिक्त अथर्ववेद क शिक्षा दी जाती थी। वल्लभी सुदूर दक्षिण काठियावाड़ में था जिस पंडित का विचार वल्लभी विद्वान सही मानते वह अपन विद्वता के लिये देश भर में प्रसिद्ध हो जाता।

ये विद्यालय राजाओं की सहायता से चलते थे और वह सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। देश के पूर्वीय भागों जनपदों में शिक्षा का कोई अच्छा केन्द्र न होने के कारण वह के राजाओं ने विद्वानों की सलाह से आसम में नवद्वीप नाम स्थान पर एक शिक्षा केन्द्र की स्थापना की।

धीरे-धीरे पंडितों के बीच नवद्वीप की चर्चा होने लगी। वह दूर-दूर से विद्वान् बीहड़ जंगली वटिया महीनों में पार क पहुँचते थे। जंगली जातियों में तंत्र-मंत्र, जादू-टोना बहुत प्रचलित था। 'कामरूप' के जादू की चर्चा सभी प्रदेशों में होती रहत थी। ब्रह्मचारी वहाँ कई वर्ष शिक्षा ग्रहण कर लेने के बाद पूर पाण्डित्य प्राप्त कर अपने-अपने ग्राम तथा नगरों को लौट आते। वहाँ का राजा उनका स्वागत कर उनको अपने दरबार विशिष्ट स्थान देता था।

एक बार तीन ब्रह्मचारी नवद्वीप से शिक्षा प्राप्त करके अपन नगर को लौट रहे थे। वे कई सप्ताह भयंकर जंगलों के बीच रास्ता तय कर और कन्द-मूल से अपनी भूख मिटा कर एक गाँव के समीप पहुँचे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे वहाँ

राजा से मिलेंगे और ठीक व्यवस्था हो गई तो वहीं रह कर शिक्षा और संस्कृति का प्रचार करेंगे।

संध्या हो आई थी। बस्ती से कुछ दूर हट कर एक वृक्ष के नीचे उन्होंने डेरा डाला। एक व्यक्ति वही रह गया, जबकि दो ब्राह्मण बस्ती में भिक्षा लेने के लिये गये और वहाँ के गृहस्थों से भोजन की वस्तुएँ प्राप्त करके लौट आये। खा-पीकर वे लोग आपस में कई विषयों की चर्चा करते रहे। वसन्त का मौसम था और चाँदनी रात। कुछ देर बाद चारों ओर मनमोहनी उज्ज्वल छटा छा गई। तीनों को उसने मोह लिया। उन्होंने निश्चय किया कि कुछ देर टहल कर उस वातावरण का सौन्दर्य निहारा जाय।

अब वे तीनों साथी इधर-उधर टहलने लगे। एक स्थान पर किसी पशु के खुरों की छाप दूर तक चली गई थी। एक ने सावधानी से उनको देख कर कहा, "मित्र, लगता है कि भैंस इधर से गई है। ऐसा न हो कि वन में कोई हिंसक जानवर उस पर हमला कर डाले।"

वे उन निशानों को देखते हुये वन की ओर बढ़ गये। एक जगह भूमि पर नमी थी। उन तीनों में दूसरा वहीं खुरों के निशानों के पास बैठ कर उनका सूक्ष्म निरीक्षण करने लगा। कुछ देर सोच-विचार कर पाया कि एक ओर चिन्ह गहरे हैं जबकि दूसरी ओर छिछले। हँस कर कहा, "शुभ चर्चा है। भैंस गाभिन है। उसके बच्चा होने वाला है। निशानों से लगता है कि गर्भ की पीड़ा से परेशान होकर जल्दी-जल्दी इधर से गई है। उसके पाँव डगमगा रहे थे। उसे गये हुये दो तीन घंटे से हो गये है।"

तीसरा ब्राह्मण युवक यह सुन गंभीर होकर बोला, "पाँव ठीक ही डगमगाये हैं। समय से दो महीने बाद बच्चा हो रहा है। अब तक वह पाड़ी जन चुकी होगी।"

इस भाँति तीनों अपना-अपना मत देकर चुप हो गये। पहले ने कौतूहलवश यह सुझाव दिया कि भैंस ढूंढी जाय। कुछ दूर आगे जाने पर उनको एक बरगद के पेड़ के नीचे भैंस जुगाली लेती हुई मिली। पाड़ी इधर-उधर उछल-कूद मचा रही थी। तीनों को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन ही मन अपने गुरु को प्रणाम किया, जिनसे यह ज्ञान प्राप्त हुआ था। अब उनको भरोसा हो गया कि अपनी बुद्धि के बल पर वे जीवन में सफलता पूर्वक प्रवेश कर सकते हैं।

वे आपस में यह चर्चा करके लौट रहे थे कि राजा के सिपाही वहाँ पहुँचे और उनको धमका कर कहा, "वाह बेटों, राजा की भैंस चुरा कर तुम इस गाँव में ले आये हो। अब अपनी करनी का फल भुगतो।"

सिपाही उनको पकड़कर ले गये। आगे पाड़ी, फिर भैंस और उसके बाद तीनों पंडित। सिपाही उनके पीछे-पीछे चलने लगे। जब पाड़ी थक जाती तो तीनों ब्राह्मणों को बारी-बारी से उसे लाद कर ले जाना पड़ता था। इस भाँति वे रात भर चलते रहे और अगले दिन दोपहर को राजधानी पहुँचे। तीसरे पहर सिपाही उनको राज-दरबार में ले गये।

सिपाहियों के नायक ने राजा से फरियाद की, "महाराज, एक सप्ताह हुआ ये तीनों चोर राज्य की गोशाला से भैंस चुराकर ले गये। एक सप्ताह ढूंढ़ने के बाद कल रात भैंस और ये तीनों एक गाँव के पास वाले जंगल में मिले हैं।"

राजा ने तीनों पंडितों की ओर देखा। बिना किसी पूछ-ताछ के फैसला सुनाया, "तीनों को चोरी के अपराध में सजा दी जाती है। एक का एक पांव, दूसरे का एक हाथ और तीसरे का एक कान काट लिया जाय। पन्द्रवें दिन इसके लिये एक विशेष दरबार लगेगा।"

बस वे तीनों पंडित जेल भेज दिये गये। उन विद्वानों की समझ में राजा का न्याय नहीं आया। उस पर भी शास्त्रार्थ करने लगे। एक बोला, "मित्रों, राजा कुछ वैसा ही है, पुराने संस्कार नहीं गये हैं।"

दूसरे ने तत्काल कहा, "तुम ठीक कहते हो। राजा की बुद्धि और सूझ इसकी पूरी-पूरी पुष्टि करती है।"

तीसरा यह सुनकर हँस पड़ा, "महाराजधिराज ने अपने कुल जैसा व्यवहार निभाया। यह विचित्र देश लगता है। राजा और प्रजा दोनों की समान बुद्धि है। यहां सब ही बुद्धिमान लगते हैं।"

जेल के सिपाही इस चर्चा को सुन कर घबरा गये। उनको लगा कि तीनों पागल हो गये हैं। राजा ने सजा दी इस बात का इनको दुःख नहीं है। इन लोगों ने अन्य कैदियों के समान दुबारा न्याय की फरियाद भी नहीं की है।

यह सोच कर कि अपराधी कोई उपद्रव न कर बैठें वे जेलर के पास गये और उनको पूरी बात सुनाई। जेलर घबरा कर राज दरबार पहुँचा और निवेदन किया कि तीनों मूर्ख पागल श्रीमान् महाराज के विरुद्ध अनर्गल बक रहे है। इससे जेल का अनुशासन भंग हो गया है। वे तो आपस में ठठा कर खिलखिलाते हुए कह रहे है कि राजा को न्याय करना तक नहीं आता है।

राजा ने मंत्री को आदेश दिया कि उन तीनों नालायकों को कल दरबार में लाया जाय। अगले दिन मंत्री जेलखाने गये और उनकी कोठरी खुलवाई। मंत्री को देखकर वे तीनों खूब हँसे। एक बोला, "राजा की तरह ही यह भी 'वैसा' लगता है।"

दूसरा उठा और मंत्री के चारों ओर का चक्कर लगा कर बोला, "इनकी भी राजा के समान पूछ नहीं है।"

तीसरा खिलखिलाया, "वेसींग का है।"

इन बातों को सुनकर मंत्री बहुत क्रोधित हुए। उसने सिपाहियों से कहा कि तीनों की मुश्के बाँध कर दरबार में ले चल। जेलर को आदेश दिया कि दरबार के बाहर वाले मैदान में जल्लाद से तीन सूलियाँ गड़वा दें। अब उनकी ओर क्रोध में काँपते हुए बोले, "तुम को वहीं भेज देंगे।"

वे सब राजदरबार पहुँच गये। वहाँ तीनों ने राजा को घूर-घूर कर सिर से पाँव तक देखा और मुस्कराए। उनका अभिवादन तक नहीं किया। तीनों मन में सोच रहे थे, प्राण बचाने की चेष्टा करनी ही होगी।

महाराज ने तीनों के हाथ खुलवा दिये और क्रोधित होकर कहा, "तुम लोगों की बड़ी शिकायतें आई हैं। तुमने चोरी की और सजा दिये जाने पर जेल का अनुशासन भंग कर रहे हो। क्या तुम पागल हो गये हो? इस प्रकार भौंड़ी-भौंड़ी बातें अन्यथा न करते। तुम सच बातें बता दो, नहीं तो सूली पर चढ़ाये जाओगे।"

पंडितों ने सोचा कि प्राणों की रक्षा इस मूर्ख के हाथों होने से रही। इसीलिये सच बात कहकर ज्ञान का परिचय दरबार के ोगों को दे दिया जाय जिससे सभासद अपने राजा के संबंध-

में परिचित हो सकें। एक ब्राह्मण युवक आगे बढ़ा और राजा के आगे सिर झुका कर कहा, "राजन्, मैंने जो बात कही उसका अर्थ होता है कि यहाँ का राजा मनुष्य नहीं, वह तो बैल के समान पशु है। उसे व्यर्थ ही राजगद्दी पर बिठा दिया गया। वह उस पद के योग्य नहीं है।"

अब दूसरा ब्राह्मण आगे आया और हँस कर बोला, "महाराज, मैंने यह संदेह प्रकट किया कि भाई, यदि वह बैल है तो यहाँ दरबार में क्यों बैठा हुआ है। वह और पशुओं की भाँति जंगल में क्यों नहीं छोड़ दिया गया कि वहाँ घास चरता।"

राजा ने तीसरे पंडित की ओर देखा तो उसने निवेदन किया, "हे राजा, मैंने निर्णय दिया कि वह वज्र मूर्ख है। सींग होते तो न जाने क्या-क्या करतब दिखलाता।"

राजा ने तीनों की बातें सुनकर विचार किया। आज तक ऐसा ढीठ व्यवहार उनके साथ किसी ने नहीं किया। और दिनों की बात होती तो वह तीनों की जीभ खींचवा कर बाहर निकलवा देता। वह बड़ी देर तक उन तीनों तेजस्वी व्यक्तियों की ओर देख कर इस नई परिस्थिति पर विचार करता रहा। अंत में नम्र होकर उसने पूछा, "मूर्खों, तुमने दरबार का अपमान किया है। इसके लिये तुम संध्या को सूली पर चढ़ा दिये जाओगे। लेकिन यह तो बताओ कि, तुम लोगों ने ऐसी बातें कहने की धृष्टता क्यों की है?"

यह सुन कर एक युवक आगे बढ़ा और बोला, "महाराज, हम तीनों ब्रह्मचारी सात वर्ष तक नवद्वीप में शिक्षा लेकर घर लौट रहे थे। रास्ते में एक पशु के खुरों के चिह्न दिख पड़े। मैंने उनको देखकर बताया कि भैंस के हैं। मेरा दूसरा साथी

इस पर बोला कि भैंस गाभिन लगती है। यह सुन कर तीसरे मित्र ने बताया कि उसको पाड़ी हुई है। अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये हम वन की ओर भैंस ढूंढ़ते हुये बढ़े। उसे देख कर प्रसन्न हुये कि हमारा अनुमान सही निकला। उसी समय आपके सिपाहियों ने बिना कुछ पूछे हुए हमें गिरफ्तार कर लिया और आपने बिना जांच किये हुये ही एक तरफ की बात सुनकर हमें चोरी के अपराध में सजा दे दी।

उन तीनों ब्रह्मचारियों का परिचय पाकर राजा को अपने कर्तव्य पर बहुत दुःख हुआ। उसने उन विद्वानों से क्षमा मांगी और प्रार्थना की वे उसकी सभा में रह कर देश में शिक्षा तथा संस्कृति का प्रचार करें। उसने उनके लिये राजधानी में एक शिक्षा-केन्द्र खोल दिया। वहाँ सभी जातियों के लोगों को शिक्षा दी जाने लगी।

●

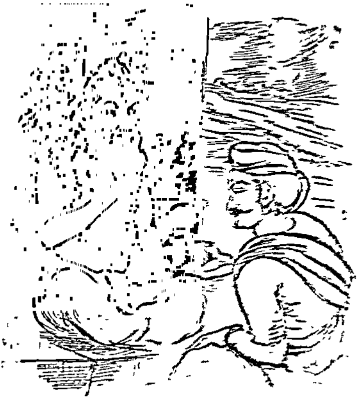

सच की कसौटी

वहीं वीरभद्र नाम का एक डाकू रहता था। वह बड़ा ही क्रूर प्रकृति का था। डाका डालते समय उसके आगे बूढ़ा-बच्चा, स्त्री-पुरुष जो आता वह उसकी निर्मम हत्या करने में नहीं चूकता था। इसलिए उसका आतंक दूर-दूर तक फैल गया। वहाँ के राजा ने कई बार उसे पकड़ने की चेष्टा की, पर असफल रहा। इससे भी उसका साहस बढ़ गया।

उसमें भले ही बहुत से दुर्गुण थे पर एक गुण यह था कि अपने द्वार पर आये हुए अतिथि का सत्कार कर उसकी सेवा करके उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करता था। वह अपंग और निर्धन लोगों की समय-समय पर सहायता करता था। उनके प्रति उसका सहृदयपूर्ण व्यवहार देख कर सबको आश्चर्य होता। जो वीरभद्र डाका डालते समय क्रूर हो उठता है वह अतिथि पर दयावान् और विनीत कैसे हो जाता है?

एक दिन उस नगरी में पुरी, बदरिकाआश्रम, द्वारिका और रामेश्वर इन चारों धामों की यात्रा करके एक साधु आये। रात होने वाली थी, इसलिये उन्होंने सोचा कि आज की रात किसी ब्राह्मण के यहाँ काटी जाय।

वे एक गरीब ब्राह्मण के घर पर गये और रात भर वहाँ रुकने के लिये कहा। ब्राह्मण यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अन्दर जाकर अपनी पत्नी से साधु को भोजन कराने की बात कही तो उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

ब्राह्मणी ने गद्गद स्वर में कहा, "हम बड़े अभागे हैं कि द्वार पर आये हुये अतिथि को एक जून पेट भर भोजन नहीं करा सकते! इस समय केवल दो रोटियाँ बची हुई हैं, जिन्हें मैंने बच्चों के लिए रख दिया है। बच्चे आज भूखे रह सकते हैं। हमें साधु को भोजन कराकर धर्म की रक्षा करनी चाहिये।"

साधु ने पति-पत्नी की बात सुनकर सोचा कि इस अन्न को खाने से पाप लगेगा। यहाँ ठहरना उचित नहीं है। ब्राह्मण हाथ-पांव धोने के लिये बड़े लोटे से जल भर कर लाया तो साधु ने उससे कहा, "बच्चा, मैंने तुम लोगों की बातें सुन ली हैं। बच्चे भगवान के अवतार होते है। उनका हिस्सा मैं कैसे खा सकता हूँ ! तुम यह बताओ कि आस-पास कोई धनी व्यक्ति रहता है ?"

ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर कहा "महाराज, यहाँ मोहल्ले में सबसे धनी व्यक्ति वीरभद्र नामक डाकू है। लेकिन आप यह क्यों पूछ रहे हैं ?"

साधु तत्काल बोले, "बेटा मैंने निश्चय किया है कि आज उसी के यहाँ रहूँगा।"

यह बात सुनकर ब्राह्मण ने विनती की, "आपका उसके यहाँ जाना उचित नहीं। उसके सिर सैकड़ों हत्या का पाप चढ़ा है। इसीलिये वह बहुत दान-पुण्य करता है। आप रात्रि भर यहाँ रहें और रूखा सूखा भोजन खाकर विश्राम करें। यह हमारा धन्य भाग है कि हमें आपकी सेवा करने का अवसर मिला है।

लेकिन साधु रुका नहीं और अपना कमंडल उठाते हुये उसने कहा, "मैं फिर कभी तुम्हारे यहाँ अवश्य आऊँगा। मैं तुम्हारे आतिथ्य से संतुष्ट हूँ।" यह कहकर साधु उसे आशीर्वाद देकर चला गया।

साधु कुछ देर बाद वीरभद्र की ऊँची अट्टालिका पर पहुँचा और दरवान से बोला, "बेटा, अपने मालिक से जाकर कह दो कि एक साधु द्वार पर बैठा हुआ उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

वीरभद्र के यहाँ आज तक कोई साधु-सन्त नहीं टिका था। वे उससे दूर रहते और उसकी दान-दक्षिणा स्वीकार नहीं करते थे। उसने मन में सोचा कि हो-न-हो कोई भेदिया साधु के वेष में आया है। द्वार पर पहुँचा तो साधु ने उसकी मंगल-कामना करते हुये रात भर ठहरने की स्वीकृत माँगी। उसने प्रसन्न होकर रहने तथा खाने की व्यवस्था कर दी।

कुछ देर के बाद वह साधु के कमरे में आया और हाथ जोड़ कर बोला, "आपने मेरी कुटिया को अपने सत्संग से कृतार्थ कर दिया, अब कृपया भोजन करें।"

उसकी बात सुनकर साधु बोला, "बेटा, मैं किसी के यहाँ भोजन तभी करता हूँ जब पहले मुझे मनचाही दक्षिणा मिल जाती है।"

वीरभद्र ने सोचा कि साधु महात्मा अधिक-से-अधिक कमंडल लंगोटी, आध पाव गांजा और एक कम्बल ही तो माँगेंगे। अतः उसने कहा, "महाराज, आप जो भी दक्षिणा कहेंगे मिल जायेगी। वीरभद्र के यहाँ से आज तक कोई असन्तुष्ट होकर नहीं लौटा है।"

साधु ने मुस्कराकर कहा, "मेरे लिये भोजन से अधिक दक्षिणा का महत्व होता है।"

डाकू बोला, "महाराज, आप अतिथि और फिर सन्त है। आप जो चाहे माँग लें। उसके बाद चलकर भोजन करें।"

साधु ने कहा, "बेटा, पहले वचन दो कि जो कुछ मागूँगा वही दोगे?"

वीरभद्र छाती फुलाकर बोला, "मैंने आज तक कभी अतिथि से झूठा वायदा नहीं किया है। आप जो माँगेंगे वह मैं आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा।"

इस आश्वासन को पाकर साधु सरलता से बोला, "वीरभद्र, पहले वचन दो कि आज से कभी झूठ नहीं बोलोगे। यह मेरी दक्षिणा है।"

साधु की बात सुनकर डाकू ने सोचा कि यह संत कितना मूर्ख है। यह चाहता तो आज मेरी पूरी सम्पत्ति माँग लेता, पर उसने माँगी भी तो क्या चीज ? उसने गंभीरता से कहा, "महाराज, आपकी बात स्वीकार है। आज से कभी झूठ नहीं बोलूंगा।" इसके बाद साधु ने जाकर भोजन किया और रात्रि भर विश्राम करने के बाद सुबह को अपनी राह चल दिया।

अब वीरभद्र साधु को दिये वचन के अनुसार सच बोलने लगा। लेकिन इसके कारण उसका डाका डालना बन्द हो गया। कुछ महीनों के बाद उसकी संचित पूंजी समाप्त हो गई तो वह बहुत चिन्तित हुआ। उसके साथियों ने भीधीरे-धीरे उसका साथ छोड़ दिया और अपना नया गिरोह बना लिया। वे उसको 'साधु का चेला' कहते मखौल उड़ाते।

इस भाँति वीरभद्र का जीवन ही बदल गया। अब कोई आय न होने के कारण वह बहुत चिन्तित रहने लगा। एक दिन उसने अपनी परिस्थिति पर विचार कर सोचा कि उसने साधू से सच बोलने के लिये कहा है। यह वचन नही दिया था कि डाका नहीं डालेगा। अतः क्यों न फिर से डाका डाला जाय। बड़ी देर तक सोचने-विचारने के बाद उसने निश्चय किया कि डाका डालकर कुछ धन एकत्र कर लिया जाय।

उसने पहले के डाके में लूटी हुई एक राजा की पोशाक निकाल कर पहन ली। संध्या को घोड़े पर सवार हुआ और मध्य रात्रि को राजधानी जाकर राजमहल में पहुँचा। बड़े

फाटक के पास एक खूँटी पर घोड़ा बाँध कर उसने पहरेदारों से फाटक खोलने के लिए कहा। उन लोगों ने पूछा, "आप कौन है ?"

उसने मुस्कराकर उत्तर दिया, "मैं एक डाकू हूँ और यहाँ चोरी करने के लिए आया हूँ।"

वहाँ का राजा बहुधा रात्रि को नगर में जाकर वहाँ के हाल-चाल का पता लगाया करता था। द्वारपाल राजसी पोशाक देखकर समझे कि महाराज उनकी परीक्षा ले रहे हैं। चुपचाप उसे भीतर जाने दिया। उन्होंने यह भी सोचा कि चोर इस भाँति निडर होकर अपना प्रचार कभी नही करता है। इस भाँति वीरभद्र अन्दर गया और कुछ बहुमूल्य मणि तथा नौलखा हार लेकर बाहर आ गया। उसके बाहर चले आने पर भी पहरेदारों ने कोई अड़चन नही डाली।

प्रातःकाल जब राजा उठे तो उनको ज्ञात हुआ कि रात्रि को महल मे चोरी हुई है। राजा ने द्वारपालों को बुलवा कर पूछा कि कल रात्रि को महल के भीतर कौन-कौन लोग आये थे। द्वारपालों ने उत्तर दिया, "महाराज! एक व्यक्ति आपके ही समान पोशाक पहने हुए यहाँ आया। वह कहता था कि चोर हैं। हम समझे आप भेष बदल कर हमारी परीक्षा ले रहे हैं। फिर कोई व्यक्ति चोरी करने की नियत से आयेगा तो वह क्यों अपने मन की बात बतावेगा। इसीलिये हम लोगों ने उस व्यक्ति को आने-जाने में नहीं रोका।"

राजा को द्वारपालों की बात सुनकर बहुत अचरज हुआ। बड़ी देर तक वे चिन्तित रहे। फिर कुछ निश्चय करके मंत्री को बुलवाया। उनके आने पर आदेश दिया कि राज्य भर में डुग्गी पिटवा दें कि राजा उस साहसी व्यक्ति से मिलना चाहता

है जिसने अपने आपको चोर बतला कर राजमहल में चतुराई के साथ चोरी की है।

मंत्री ने उनकी आज्ञा का पालन करके चारों ओर डुग्गी पिटवा दी। राजधानी तथा अन्य नगरों में इस समाचार से बहुत हलचल हुई और लोग उस व्यक्ति को देखने के लिये लालायित हो उठे। वीरभद्र ने राजा की घोषणा सुनी तो उसने वही राजसी पोषाक निकाल कर पहनी और राजा के दरबार में सम्मिलित होने के लिये रवाना हो गया। राजमहल में पहुँच कर अपने आने की सूचना दी।

राजा ने तुरन्त ही उसे सम्मानपूर्वक दरबार में लाने की आज्ञा दे दी। वीरभद्र वहाँ पहुँचा और उसने राजा का अभिवादन किया। महाराज उसे देख कर दंग रह गये और क्रोधित होकर पूछा कि वह वहाँ क्यों आया है ?

वीरभद्र ने कहा, "राजन मैं वही चोर हूँ जिसने परिस्थितिवश आपके महल में चोरी की थी। मैंने एक साधु को वचन दिया है कि सदा सच बोलूंगा। इसीलिये पहरेदारों को अपना इरादा बता दिया था।"

राजा उसकी सच्चाई पर मुग्ध हो गया। वीरभद्र ने पूरी कथा सुनाई और साधु वाली घटना विस्तार से बतायी। वीरभद्र की पूरी कथा सुन लेने के बाद राजा उसकी सच्चाई से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने वीरभद्र को सात गाँव जागीर में दिये ताकि उसे अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए भविष्य में चोरी न करनी पड़े।

वीरभद्र ने राजा की बातें सुनकर उनसे निवेदन किया कि आगे वह एक ईमानदार नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करेगा।

●

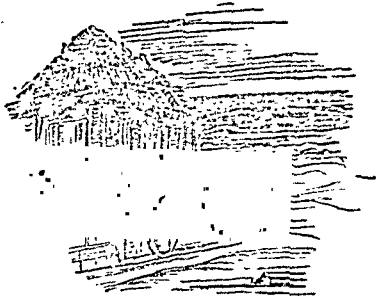

शिल्पी की देन

हम उड़ीसा प्रदेश में प्राकृतिक सौन्दर्य का नया रूप पाते है। उसके दक्षिण में सागर की लहरें वहाँ की धरती पर मुस्कान बिखेरती है, तो चन्द्रभागा, सुवर्ण रेखा और बुड़ाबलन की त्रिकोण भूमि पर धान की खेती लहलहाती है। महानदी और इन्द्रावती अपने जल से वहाँ जीवन लाती है। जबकि सुन्दर झरनों और बड़े-बड़े चारागाहों का रूप मन को मोह लेता है।

आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व वहाँ गंग-वंश के महाप्रतापी राजा नरसिंह देव राज्य करते थे। उनकी मन्दिर तथा

सुन्दर भवनों को वनवाने की ओर वड़ी रुचि थी। उनकी राजधानी समुद्र के किनारे थी। वहाँ नित्य ही दूर-दूर देशों से शिल्पी आकर आश्रय लेते थे। नगर के व्यापारी तो दूर नौयामा, चंपा, व्रह्मदेव, सुवर्णद्वीप, सिंहल आदि देशों में जाते और वहाँ की जलवायु, रहन-सहन तथा व्यापार की सभावना के वारे में महाराज को वताया करते थे। वहाँ के नाविक सुन्दर पोतों को सागर में खेते हुए उसकी लहरों की मदमाती और सुहावनी पुकारें सुनकर नए-नए गीत रचते थे।

एक दिन वर्षा ऋतु के समाप्त होने के वाद महाराज अपने राज्य के भ्रमण को निकल पड़े। प्रातःकाल का समय था। चन्द्रभागा नदी की वेगवती धारा सागर का आलिंगन करने के लिए आगे वढ़ रही थी और सागर की लहरें अपनी वहिन को अपनाने को वाहें फैलाये हुए मिली। सूर्योदय के साथ सागर में लाली छाई और सूर्य भगवान की किरणें उस प्रदेश में प्रवेश करने लगीं।

महाराज उस दृश्य को देखकर वहुत प्रभावित हुए और उनके मन में वात उठी कि क्यों न वहाँ सूर्यदेव के मन्दिर का निर्माण किया जाय? उनके सम्मुख एक धुंधला सा चित्र आया। उस मन्दिर की यह विशेपता होगी कि समुद्र से आती हुई सूर्य की किरणें प्रमुख द्वार से शनैः शनैः प्रवेश करती हुई प्रथम कोष्ट पार कर सूर्यदेव की प्रतिमा के चरणों का स्पर्श करेंगी। उन्होंने कल्पना की कि सुवह को जव सूर्य की किरणें प्रथम प्रांगण पार कर द्वितीय प्रागण में आकर चवूतरे पर स्थिर मूर्ति के चरणों की वन्दना करती होंगी तो वह वहुत ही आकर्पक दृश्य होगा।

जव वे राजधानी लौट कर आए तो उनको अपने संकल्प की याद आई। एक दिन दरवार में भी उस वात की चर्चा

कर मंत्री को आदेश दिया कि अपने राज्य तथा बाहर के प्रदेशों में यह सूचना प्रसारित करा दी जाय कि वे सूर्य भगवान के मंदिर का निर्माण करना चाहते हैं। शिल्पियों को उनकी योग्यतानुसार पुरस्कार दिया जायगा। कुछ दिन बाद वहाँ दूर-दूर के नगरों से शिल्पी आने लगे। एक दिन वे उन सबको लेकर उस स्थान पर गये और अपने मन की बात कही। उनको तीन मास का समय मानचित्र बनाने के लिये दिया।

कई शिल्पियों ने अपनी कारीगरी के नमूने उनको दिखाए, पर उनको संतोष नहीं हुआ। उनमें से कोई भी महाराज के मन की बात न समझ सका था। इससे महाराज को बड़ी निराशा हुई। तभी एक दिन विशू नामक एक महान शिल्पी ने आकर महाराज के आगे अपना मानचित्र प्रस्तुत किया।

विशू ने बताया कि वह एक विशाल रथ बनवायेगा, जिसकी पीठ सैकड़ों गज लम्बी होगी और उसमें चौबीस पहिये होंगे। फिर रथ को खीचने के लिए वह पर्वत के समान सात भव्य घोड़ों का निर्माण करेगा। इस रथनुमा मंदिर के भीतर सूर्य भगवान की प्रतिमा रहेगी। उसकी विशेषता यह होगी कि सागर से आते हुए सूर्य की किरणें मुख्य द्वार से धीरे-धीरे प्रवेश करती हुई प्रथम कोष्ठ पार कर सूर्य देव के चरणों का स्पर्श करेंगी और फिर महाराज की इच्छानुसार सूर्य-प्रतिमा के चरणों पर जावेगी।

शिल्पी ने सुझाया कि सात अश्व सप्ताह के सात दिवस तथा चौबीस चक्र वर्ष के चौबीस पक्ष होंगे। प्रत्येक चक्र में आठ-अर होंगे जो रात-दिन के आठ पहरों का बोध करावेंगे। उसने इस कार्य के लिये बारह सौ कारीगर और लगभग चार हजार

मजदूरों की माँग की। उनको विश्वास दिलाया कि सम्पूर्ण निर्माण-कार्य ठीक समय पर हो जायेगा।

अब उस स्थान पर दूर-दूर से शिल्पी और मजदूर आने लगे। इन लोगों का काम ही निर्माण करना था। राजाओं की रुचि धरती पर सुन्दर भवन और मंदिर बनाने की हो गई थी। इसलिए उनको काम की कमी नही थी। उनकी गोष्ठियाँ होतीं। जहाँ कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाते थे। विशू अपने साथियों को बताता कि मानव ने अपने श्रम से ही देवत्त्व को प्राप्त किया है। मनुष्य बहुत बलवान है, फिर श्रमिक तो अपने पसीने की कमाई पर जीकर जीवन का आनंद उठाता है। यह सुनकर सबको बड़ी स्फूर्ति मिलती थी। वे दिन भर काम करते और रात को नाच-रंग में मस्त रहते थे।

उस स्थल पर धीरे-धीरे एक छोटा नगर बस गया। सब अपने काम पर जुट गए। चद्रभागा और सागर के संगम पर शिल्पी ने सैकडों गाड़ियाँ भारी-भारी पत्थरों की डालीं। लेकिन वे तेज प्रवाह में बह जाते। उस पर विजय पाना आसान नहीं लगा। वहाँ के स्थानीय लोगों का अंधविश्वास था कि सागर में मछलियों का राजा रहता है। उसे मनुष्य की हरकतें पसन्द नहीं है। इसीलिये वह उन पत्थरों को निगल डालता है।

कई महीने बीत जाने पर भी नीव न डाली जा सकी। विशू की चिन्ता बढ़ी और फिर वह हताश हो गया।

वह महीने का अन्तिम दिन था और सबकी छुट्टी थी। कुछ सोचकर विशू प्रातःकाल घूमने के लिये निकल पड़ा। वह अपने ध्यान में मग्न होकर जंगल के बीच वाली बटिया पर बढ़ रहा था। सुबह की धूप वन में झांक रही थी। चारों ओर

सुन्दर पेड़-पौधे खड़े थे। उसे देखकर एक धारीदार गिलहरी पेड़ के पीछे छिप गई। वह बड़ी देर तक उधर देखता रह गया। अब गिलहरी के दो कान दिखलाई पड़े, फिर माथा सामने आया और अंत में उत्सुकता से भरी हुई दो आँखें। वह उसके साथ बच्चों की भाँति आंख-मिचौनी खेलने लगी।

वह अपनी धुन में ही आगे बढ़ता गया। अब वन समाप्त हो गया था और खेत फैल रहे थे। दोपहर भी हो आई थी। सामने गाँव देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह बहुत थक गया और उसे बड़ी भूख लग रही थी। तेजी से बढ़ कर गाँव के पास पहुँचा और पहली झोपड़ी मे उसे एक बुढ़िया मिली।

उसने उसे प्रणाम कर कहा, "बूढ़ी माँ, मैं बहुत प्यासा हूँ। भूख भी लगी हुई है। क्या आप मुझे कुछ खाने को दे सकेंगी?"

बुढिया ने उसे प्यार से बुलाया। हाथ-मुँह धोकर वह आराम से लेट गया। इस बीच बुढ़िया ने खिचड़ी बनाई और थाली पर रख कर लाई। वह समझ गई कि मन्दिर के निर्माण में कार्य करने वाला कोई कारीगर है। बस थाली आगे रख कर बोली, "बेटा, हमारे यहाँ की प्रथा है कि खिचड़ी बीच से खाई जाती है। तू भी इसी तरह से खावेगा तो स्वादिष्ट लगेगी।"

उसकी बात मान कर शिल्पी ने बीच से खाने की चेष्टा की तो उसकी उँगलियाँ जल गई और जीभ पर छाले पड़ गए। यह देखकर बुढ़िया हँसी और बोली, "बेटा हमारा बिशू भी इसी भाँति मन्दिर की नींव डाल रहा है।"

"क्या माँ?"

"बेटा, खिचड़ी किनारे से खानी चाहिए। वहाँ वह ठंडी रहती है। इसी भाँति चन्द्रभागा के बीच में बड़ा वेग है। इतना

बड़ा कारीगर जानकर भी वहाँ पत्थर डाल रहा है। उसकी समझ में यह नहीं आया कि किनारे से पत्थर डालकर वह नदी का प्रवाह कम कर सकता है। इस तरह नींव आसानी से पड़ जायगी।"

विशू ने खाना खाया। बूढ़ी माँ को धन्यवाद देकर लौटा। राह में सोचता रहा कि उसके कई साथियों ने भी यही सुझाया था, पर उसने उनकी बात नही मानी। अपनी भूल पर वह बहुत पछताया। अगले दिन उसने नदी के किनारे से नींव भरनी आरंभ की और उसे पूर्ण सफलता मिल गई। अब वह अपने साथियों के साथ काम पर जुट गया। उसने सूर्य भगवान की मूर्ति के लिये चौकोर गर्भगृह बनाया। २२७ फुट की ऊँचाई पर कलश रखने के लिए स्थान निर्मित किया। सूर्य के घोड़ों पर बारीक रेखाएँ खींच कर इतनी भव्य मूर्तियाँ गढ़ीं कि वे सजीव लगने लगीं। सच ही वे अश्व सजीव मुद्रा में शक्ति से उफनते हुए तीव्र गति से बढ़ने लगते थे। ऐसा अनुमान होता था कि सारथी उनको रोकने में अपने को असमर्थ पा रहा था! मन्दिर में ऊपर से नीचे तक बारीक खुदाई का काम करवाया गया, जिससे उसका सौन्दर्य बढ़ गया।

शिल्पी ने सूर्य भगवान के लिये जगमोहन, नट-मंदिर, योग-मंडप अदि बनवाए। उनके लिये नर्तकियाँ, गाने-बजाने वाली टोलियाँ, सुन्दर पोशाकें, हीरे-मोती जड़े हुए गहने, हाथियों, घोड़ों, गायों और पालकियों की व्यवस्था दीवालों पर गढ़ कर की गई। मंजीरे, ढोलक, पखावाज, नृत्य की भाव-मुद्रायें तथा साकार प्रतिमायें भी रेखांकित की गई, जो उल्लास की प्रतीक थी। तीस फुट की ऊँचाई पर चबूतरा बना कर सूर्य भगवान

के सारथी अरुण की मूर्ति भी गढ़ी गई। सूर्य भगवान की पत्नी संज्ञा का भी सुन्दर मन्दिर बनाया गया।

अब विशू अपने निर्माण-कार्य को देखकर बहुत प्रसन्न होता था। लोग उसे महाशिल्पी कहकर पुकारने लगे। वह भी घमंड में फूला न समाता था। गर्व से कहता, "मैंने पत्थरों में प्राण डाल दिए, उनमें गति पैदा कर दी है। वे सजीव हैं। संसार में कोई व्यक्ति ऐसा निर्माण कार्य नही कर सकता है।"

मंदिर का काम समाप्त भी न हो पाया था कि शिल्पी का हृदय दंभ से भर गया। उसके मन में यह बात बैठ गई कि संसार में उससे श्रेष्ठतर कारीगर दूसरा नहीं है। किन्तु क्या उसे पूर्ण सफलता मिल गई थी? मंदिर तो पूरा हो गया, पर कलश अभी नही रखा गया था। वह बार-बार कलश चढ़ाता और वह गिर पड़ता था। कलश छोटा किया गया, फिर भी सफलता नही मिली। यह देखकर उसका घमंड चूर-चूर हो गया। अपनी इस असफलता के कारण वह बहुत दुखी भी रहने लगा। बारह वर्ष के स्थान पर सोलह लग गये। महाराज ने क्रोधित होकर आदेश दिया कि यदि एक सप्ताह के भीतर कलश नहीं चढ़ाया गया तो वे प्रमुख कारीगरों को कैदखाने में डाल देंगे। यह सुनकर महाशिल्पी काँप उठा। उनकी प्रतिष्ठा देखते ही देखते नष्ट हो गई थी। एक दिन रात्रि को उसके पुत्र धर्मपद ने कहा, "पिता जी, मैं आप से एकांत में कुछ बात करना चाहता हूँ।"

पिता ने अन्य लोगों को विदा कर पूछा, "बताओ, क्या बात है?"

"पिता जी, आप कुछ वर्षों से निर्माण की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। शिल्पी की बारीकियों को सुलझाने की ओर आपकी

रुचि नहीं रह गई है। आपको आज अपने यश की चिन्ता है। आपके चापलूस साथी आपकी प्रशसा के गीत गाते है और आप उसी में रम कर अपना सही रास्ता भूल गये हैं।"

यह सब सुनकर पिता बहुत गुस्सा होकर बोले, "धर्मपद, अभी तू ठीक तरह गारा की मिलावट भी नहीं जानता है और मुझे शिक्षा देने के लिये आया है।"

पुत्र नम्रता से बोला, "पिता जी, आप दुनिया से अलग रह कर पाँच-सात व्यक्तियों से घिरे रहते हैं। मैं साधारण शिल्पियों और मजदूरों से बराबर संबंध बनायें हुए हूँ। हम लोग आपस में कई बातों पर सलाह लेकर उनको सुलझाया करते हैं। आप आज्ञा दें तो मैं कलश चढ़ाने की व्यवस्था कर दूँ।"

महाशिल्पी को यह बात अपमानजनक लगी। वे ताव में बोले, "धर्मपद, कल दोपहर तक कलश न चढ़ा सकोगे तो संध्या को मैं तुम्हारा सिर काट कर देवी को भेंट चढ़ा दूंगा।"

धर्मपद चुपचाप लौट आया। अब उसने अपना निश्चय अन्य शिल्पी साथियों को सुनाया। वे सब उसके नेतृत्व की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन प्रातःकाल धर्मपद ने अपने साथियों की सहायता से सबसे बड़ा कलश मन्दिर पर चढ़ा दिया था।

—महाशिल्पी देर से सोकर उठे। लोगों ने बताया कि कलश चढ़ गया है। वे दौड़े-दौड़े उस स्थल पर पहुँचे। कलश मन्दिर पर चमक रहा था। लेकिन मजदूर और कारीगरों को दुःखी देखकर पूछा, "धर्मपद, कहाँ है ?"

एक ने उत्तर दिया, "वह अपने चुने हुए साथियों के साथ चला गया है। उसका सन्देश है कि वह अब नए निर्माण की ओर बढ़ रहा है, जहां मानव को व्यक्तिगत दंभ नहीं होगा। वह राज-सम्मान का भूखा नहीं था। उसकी धारणा है कि निर्माण एक व्यक्ति नहीं, शिल्पियों और मजदूरों का एक समाज करता है।"

महाशिल्पी विशू अपने पुत्र से हार कर अवाक् खड़ा था। वे सोचने लगे कि सच ही कला तो प्रगतिशील है। एक व्यक्ति उसे रोक कर नहीं रख सकता है।

•

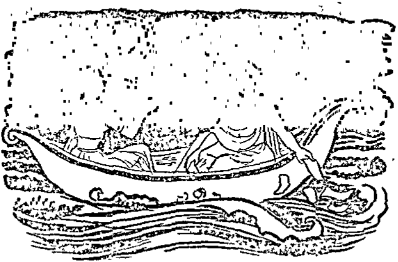

मानवता की विजय

सुदूर दक्षिण के मैसूर प्रदेश में समुद्र तट पर आचार्य महय्या का प्रसिद्ध आश्रम था। वे भारतवर्ष में ज्योतिष के श्रेष्ठ ज्ञाता थे। उनके यहाँ सूर्य सिद्धान्त, वेदान्त, सामुद्रिक मुहूर्त, संहिता, गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त आदि विषयों की शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूर-दूर से शिक्षार्थी आते थे।

उज्जयिनी के कुल का बालक मिहिर वहाँ शिक्षा पा रहा था। वह गुरु जी की मन लगा कर सेवा करता, आश्रमवासियों के आदेश मानकर चलता और पठन-पाठन में रुचि लेता था। अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण कुछ दिनों में ही वह सबका प्रिय

बन गया। इसीलिए आचार्य ने उसे आश्रम की देख-रेख का भार सौंप दिया।

एक दिन आचार्य के गुरुभाई सिंहल द्वीप के राजगुरु अपनी पुत्री खणम्भा को लेकर आश्रम में आये और उनको पुरानी प्रतिज्ञा की याद दिलाई। मित्र की बात सत्य थी कि उन्होंने उनके उत्तराधिकारी को आश्रम में लेने का आश्वासन दिया था।

उनकी उलझन, देखकर राजगुरु ने समाधान किया, "मित्र, यह मेरी एकमात्र पुत्री है। इसे योग्य समझ कर मैं विवश होकर यहाँ लाया हूँ। यह सत्य है कि आज तक इस आश्रम में किसी महिला का प्रवेश नहीं हुआ, यह जान कर भी मैं आपके पास आया हूँ।"

आचार्य कर्तव्य के आगे झुके और मिहिर को बुलाकर कहा, "बेटा, गुरुभाई की कन्या का गुरुतर भार तुमको संभालना होगा।" मिहिर ने झुक कर दोनों का अभिवादन किया और उस बालिका को लेकर आश्रम के भीतर चला गया।

कुछ दिनों में ही खणम्भा अपने गुणों और ज्ञान के कारण आचार्य की प्रियपात्र बन गई। उसके गणित के ज्ञान से कभी-कभी आचार्य को आश्चर्य होता था। अवस्था में सबसे कम होने पर भी आश्रम में उसका सम्मान बढ़ गया। मिहिर और खणम्भा ने ग्यारह वर्ष तक वहाँ शिक्षा पाई। इस बीच उनकी विद्वत्ता की चर्चा दूर-दूर के नगरों में फैल गई।

एक दिन आश्रम में पुराने छात्रों की विदाई का समारोह मनाया गया। आचार्य ने गद्गद स्वर में इन दोनों शिष्यों की प्रशंसा की और उनको आशीर्वाद दिया कि जीवन में सफल हों।

खणम्भा चौंक कर मिहिर को देखकर बोली, "मैं एक नये रहस्य का पता लगा रही हूँ। तुम मुझे पागल न समझ बैठना।"

मिहिर चुप रह गया। खणम्भा तो नित्य ही रात्रि को नक्षत्र और तारों की दुनिया में खो जाती थी। वह शुक्र तारा देखती—वह सभी नक्षत्रों में चमकीला होता। अँधेरी अमावस्या की रात्रि में उसका प्रकाश उज्ज्वल लगता। वह नित्य पश्चिमी क्षितिज पर सब तारों से पहले उदय होता और सूर्योदय के समय पूर्वीय क्षितिज पर पहुँच जाता।

उधर मिहिर अन्धकार रात्रि में अकेला ही समुद्र की लहरों के साथ संघर्ष करता होता। वह सागर की विशालता को समझ लेना चाहता था। पूर्णमासी को ज्वार की गति बढ़ी और उनकी नौका उठकर समुद्र के किनारे लगी तो वह प्रसन्न हुआ। सिंहल का तट आ गया था। उसने खणम्भा को पुकार कर बताया तो वह घबरा कर बोली, "क्या हम कुछ दिन इसी भाँति नौका में जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं?"

खणम्भा फिर सँभली और नौका से उत्तर पड़ी। वे कुछ दिन बाद उसके घर पहुँच गये। मिहिर ने गुरु जी का सन्देश देकर बेटी पिता को सौंपकर, विदा माँगी। खणम्भा के पिता ने उससे आग्रह किया कि वह वहाँ कुछ दिन रुक जाय। उसने स्वीकृत दे दी।

खणम्भा यह सोचकर कि वे शीघ्र ही जुदा होंगे, दुःखी रहने लगी। मिहिर भी जानता था कि वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकता है। अतएव उसने वहाँ कुछ महीने रहने का निश्चय किया। राजा ने अनुरोध किया कि वह वहाँ एक वैज्ञानिक वेधशाला का निर्माण करा दे। उसने प्रसन्नता से यह बात स्वी-

कार कर ली। सिंहल का राजा ज्योतिष में रुचि रखता था। मिहिर राजा की जिज्ञासा को सन्तोष देता। इसलिए वहाँ उसका सम्मान बढ़ गया। एक दिन राजा ने प्रश्न किया, "पृथ्वी के सुदूर दक्षिण में नक्षत्रों की क्या स्थिति है?" वह इसका उत्तर नहीं दे सका और सोचने के लिये दो दिन की अवधि मांगी।

घर लौटकर उसने खणम्मा को वह बात सुनाई। वह प्रसन्न होकर बोली, "जब हम समुद्र की यात्रा कर रहे थे तो मैं उन दिनों नक्षत्र लोक की कई समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कर रही थी। आचार्य ने आपको जो ग्रन्थ दिये थे उनको ले आइये, इस प्रश्न का समाधान तुरन्त हो जायगा।"

मिहिर ने उस मूर्खतापूर्ण घटना का उल्लेख कर बताया कि उस पर क्रोधित होकर उसने वे ग्रन्थ कैसे सागर में डूबो दिये। खणम्भा यह सुनकर स्तब्ध रह गई, फिर परिस्थिति समझ मुस्करा कर बोली, "बताओ न इतना खुला हुआ मार्गशीर्ष मास का आकाश मुझे फिर कब देखने को मिलता। मेरा मन तो करता है कि हम आजीवन समुद्र के बीच रह कर नक्षत्र लोक का छिपा हुआ रहस्य संसार को बता दें।"

मिहिर अपनी भूल पर बहुत पछताया। गम्भीर होकर बोला, "खणम्भा तुम मेरे जीवन की सब से प्रिय निधि हो। मैंने वह अपराध क्यों किया इसका कारण सुनो। एक दिन रात्रि में स्वप्न में मुझे किसी ने बताया कि तुम नक्षत्र ज्ञान से संसार में सम्मान पाओगी, पर आगे यही ज्ञान तुम्हारे विनाश का कारण बन जायगा।"

'यह तुम्हारी भूल है मिहिर, ज्ञान के आगे हमें अपना व्यक्तित्व भूल जाना होगा। मैं इसके लिये अपना जीवन उत्सर्ग

कर सकती हूँ। मानव के ज्ञान की खोज वाली प्रेरणा ने सदा ही समाज को प्रगति दी है। देखो न सूर्यास्त के बाद पूर्वीय क्षितिज पर जो नक्षत्र उदय होता था, उसी से हमारे पूर्वजों ने मास का नामकरण किया। जिससे हमारे इतिहास रचने वालों को तिथियों की गणना करने में आसानी हो गई।"

यह कहकर वह खिलखिला कर हँसी। मिहिर अवाक् रह गया। खणम्भा ने उसकी ठोढ़ी उठा कर कहा, "जानते हो मिहिर, पिता जी की इच्छा है कि वह मेरा विवाह शीघ्र ही तुम्हारे साथ कर दें।"

इस समाचार को सुन कर मिहिर अचरज में उसे ताकता ही रह गया। वह जानता था कि खणम्भा के बिना एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता है। वह फिर भी चुप ही रहा। सच ही अगले दिन खणम्भा के पिता ने यह इच्छा प्रकट की कि वे अपनी बेटी का विवाह उससे करना चाहते हैं। एक दिन यह शुभ कार्य सम्पन्न हो गया।

मिहिर को पिता का पत्र मिला कि वह तुरन्त उज्जयिनी चला आवे। एक दिन उसने अपनी पत्नी के साथ सिंहल छोड़ दिया। कई सप्ताह तक समुद्र की यात्रा कर वे भारतवर्ष पहुँचे और फिर तीन मास के बाद उज्जयिनी। उसकी माँ बचपन में ही मर चुकी थी। पिता वराह जिद्दी स्वभाव के थे। उनको मिहिर का इस प्रकार अपने मन में विवाह करना भला नहीं लगा। पहले तो वे खणम्भा को अपने घर में स्थान देने के लिये सहमत नहीं हुए। लेकिन नगरवासियों के अनुरोध करने पर फिर चुप हो गये।

यह सब देखकर खणम्भा बहुत दुःखी हुई। लेकिन उसने धीरज से काम लिया। एक दिन अनायास ही उसने मिहिर से

पूछा, "आपके पिता कहते कि मुझे छोड़ दिया जाय तो आप क्या करते ?"

मिहिर निरुत्तर हो गया। बहुत सोचने-विचारने के बाद बोला, "कोई भी पिता अपने बच्चे का अहित नही चाहता है। पिता की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है।"

खणम्मा इस उत्तर को सुनकर दुखित हुई। मिहिर ने सब कुछ भांप लिया। इस घटना से दोनो के मन में गहरी उदासी छा गई। वे एक दूसरे से स्नेह करते हुए भी कुछ दूर से रहने लग गये।

वराह राजा विक्रमादित्य के दरबार में राज ज्योतिषी थे। वहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। एक दिन संध्या को वे बहुत चिन्तित घर लौटे। हँसकर मिहिर से कहा, "राजा लोग बड़े झक्की होते हैं। महाराज ने पूछा है कि आकाश में कितने तारे हैं। गणना करने के लिये एक सप्ताह का समय दिया है। भला यह सब कैसे बताया जा सकता है ?"

खणम्मा यह सुनकर बोली, "पिता जी, हम दोनों मिलकर गणना करेंगे और समय के भीतर इस प्रश्न को हल कर देंगे।"

बूढ़े वराह ने छै दिन बड़ी बेचैनी के साथ काटे। उनकी सारे जीवन की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उधर खणम्भा ने रात्रि को आकाश का अध्ययन आरम्भ कर दिया। कई दिन तक गणना कर सातवें दिन प्रातःकाल अपने ससुर को पूरी विधि के साथ गणना बता दी।

सातवें दिन जब वराह राजसभा में पहुँचे तो सभी विद्वान् उत्सुकता के साथ उनकी बाट जोह रहे थे। महाराज ने झुककर

प्रणाम किया। वे उनको आशीर्वाद देकर अपने आसन पर बैठ गये। उन्होंने गम्भीरता के साथ नक्षत्र लोक का भेद खोल कर समाधान किया कि तीस हज़ार तारे हम अपनी आँखों से देखकर उनकी गणना कर सकते हैं। उससे अधिक गणना के लिये विशेष यन्त्र चाहिये।

महाराज यह सुनकर बहुत प्रफुल्लित हुए और गर्व से बोले, "संसार में वराह ही ऐसे ऋषि हैं जो इस समस्या को हल कर सके है।"

सम्राट् ने अपनी जिज्ञासा को सतुष्ट करने के लिये कई और प्रश्न किये। वराह घबराहट में गणना की विधि भूल कर उलझ गये। राजा को इससे सन्देह हो गया कि वराह ने किसी से इस सम्बन्ध में सलाह ली है। उन्होंने इसीलिये सीधा प्रश्न किया, "वराह जी आपने इस गुत्थी को स्वयं नहीं सुलझाया है। आप उस विद्वान का नाम बताइये।"

वराह को स्वीकार करना पड़ा कि उनकी पुत्रवधू जो सिंहल द्वीप की विदुषी है, उसने यह गणना की थी। यह सुनकर सम्राट् आश्चर्यचकित रह गये। वराह से बोले, "आप क्षमा के पात्र हैं। हमारा विचार है कि उस महिला को सभा में सम्मानित पद दिया जाय। आप उनसे यह पूछियेगा कि मानव को सूर्य तक पहुँचने में कितना समय लग जायगा ?"

महाराज ने आगामी पूर्णिमा को एक विशेष समारोह का आयोजन किया। खणम्भा तथा मिहिर यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन आचार्य वराह इस घटना से दुःखी तथा क्रोधित हुए। अब लोग व्यंग्य करते और राजसभा में उनका सम्मान घट गया था। उनके हृदय में धीरे-धीरे प्रतिशोध की भावना उठी।

समारोह से एक दिन पूर्व रात्रि में उन्होंने मिहिर को बुलवाया और उससे कहा, "बेटा, मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ, इसलिये निश्चय किया है कि सन्यास ले लूं। मुझे अपनी कुलदेवी का ऋण चुकाना है। उसे निभाना चाहता हूँ।"

"बोलिये पिता जी, मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ।" मिहिर तत्काल बोला।

"नहीं बेटा, मैंने भगवती से आराधना की थी कि अपनी पुत्रवधू की जीभ उसे भेंट में चढ़ाऊँगा।" पिता जी ने अपना निश्चय बताया।

यह सुनकर मिहिर सन्न रह गया। खणम्मा सुन रही थी। वह क्रोध में सामने आकर बोली, "पिता जी, आप प्रतिहिंसा की भावना से मुझे गूंगी बनाना चाहते हैं। मैं त्याग करने के लिए तैयार हूँ। आप ज्योतिष में आज के युग से पिछड़े हुये हैं। उस ज्ञान की प्रगति को नहीं देख सकते हैं। मैं महाराज के दूसरे प्रश्न का उत्तर दे रही हूँ—यदि हमारे चिड़ियों के समान पंख होते और हम एक घड़ी में बारह कोस उड़ सकते तो हम सूर्य तक दो सौ बारह वर्ष और दो महीने में पहुँच जाते।"

यह खणम्भा की अन्तिम वाणी थी। उस अभिमानी नारी ने कटार से अपनी जीभ काटकर उनको दे दी। वराह अपनी सफलता पर फूला न समाया; किन्तु खणम्भा ?

आर्यभट्ट ने सूर्य और तारों के स्थिर होने और पृथ्वी के गोल होने तथा अपने कक्ष और सूर्य के चारों ओर घूमने और चन्द्रमा के भी घूमने का प्रतिपादन किया था। खणम्भा ने मानवता की उसी विजय का नया अध्याय इतिहास में जोड़कर दम्भी वराह का मद चूर-चूर कर दिया।

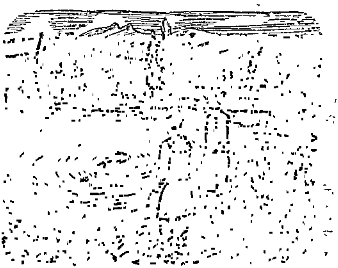

कर्त्तव्य पालन

कश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य सबका मन मोह लेता है। ऊँची पहाड़ियां, वर्फ से ढकी हुई घाटियां, हरे-भरे धानों के खेत और आंखों को सुख देने वाली केशर की क्यारियां। अखरोट, वादाम, सेब, खुबानी आदि के वाग, झीलों में तैरती हुई मछलियां और कमल के फूल। सनोवर के वृक्षों के गिरोह, चिनार के कुंज और चारागाहों में चरती हुई भेड़-बकरियां। गड़रिये ऊन कातने और बांसुरी बजाने में मस्त रहते हैं। चारों ओर इन्द्रधनुष, करनफूल, गेंदा, गुलवहार, मूँगरा वेला, शमशाद आदि के खिले हुए फूल विशाल हिमालय को अर्घ्य चढ़ाते हुये

मिलते हैं। सच ही वह देश स्वर्ग के समान है। झेलम नदी वहाँ की धरती को जल-संचारित ही नहीं करती, वहाँ की सभ्यता इसी नदी के किनारे उदय होकर आगे बढ़ी है।

आज से तीन हजार वर्ष पूर्व वहाँ एक वीर और पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसने नहरें खुदवाई, पुल बनवाए और अपनी प्रजा को सुखी बनाने के लिये कई साधन जुटाये थे।

शरद ऋतु थी। महारानी अपने महल से प्रातःकाल का सुहावना दृश्य निहार रही थीं, कुहरे का पर्दा धीरे-धीरे उठ रहा था और सामने झील में फलों और साग-सब्जियों से लदे शिकरे तैर रहे थे। अब डोंगे चलाने वालों के गीतों की ध्वनि वायु मंडल मे गूंज उठी। उसी समय दरबान एक मछली वाली को लेकर आया। उसके पास एक बहुत बड़ी रंगीन मछली थी। महारानी को मछली पालने का शौक था। उनके तालाब में रंग-बिरंगी सुन्दर मछलियाँ थी।

महारानी ने पूछा 'यह नर है या मादा।'

'नर।'

'हमें मादा मछली चाहिये।'

यदि सुनकर मछली हँसती हुई टोकरी पर उछली। मछली वाली ने महारानी से निवेदन किया कि वह शीघ्र ही मादा मछली लेकर आवेगी। वह चली गई और महारानी अपने भवन मे लौट आईं। मछली का उस भाँति हँसना उनको समझ में नहीं आया। उनको लगा कि मछली वाली उनका अपमान करने के लिये नर मछली लाई थी। वह गुस्से में तिलमिला उठीं। दासियों को उस औरत को पकड़ने के लिये भेजा।

लेकिन वह औरत पकड़ में नहीं आई। महारानी दुःखी हुई और अस्वस्थ होकर लेट गई।

महाराज ने यह बात सुनी तो वे वहां आए और पूछा, 'क्या बात हो गई महारानी?'

वे पूरी बात सुनाकर बोलीं, 'मछली ने मेरा अपमान किया है।' फूट-फूट कर रोने लगीं।

मछली की हँसने वाली बात महाराज की समझ में भी नहीं आई। लेकिन दरबान उस बात की पुष्टि करता था। उधर रानी चाहती थी कि इस बात का पता लगाया जाय कि मछली क्यों हँसी थी।

महाराज ने अपने विश्वसनीय लोगों, सेनापति एवं मंत्री को बुलाकर उनको वह घटना सुनाई। लेकिन उस बात का समाधान कोई नहीं कर सका। जब कोई हल न निकला तो महाराज ने प्रधान मंत्री को आदेश दिया कि वे एक महीने के भीतर इसकी पूरी जानकारी प्राप्त कर उनको बतावें। अन्यथा उनको देश निकाले की सजा दी जायेगी।

संध्या को मंत्री महोदय उदास घर लौट कर आए। परिवार वालों को पूरी बात बताई। वे लोग इससे बहुत दुःखी हुये। बड़े बेटे और बेटियों ने सलाह दी कि उनको वह नगर तुरंत छोड़ देना चाहिये।

यह निश्चय हो रहा था कि वे कब जावेंगे, तभी उनका सबसे छोटा बेटा, जो अब तक चुपचाप बैठा हुआ था, बोला, 'पिताजी, आप बुद्धिमान होकर इस छोटी-सी बात से घबरा गये हैं। आपने कायरों के समान नगर छोड़कर भाग जाने का

निश्चय कर लिया है । आप आज्ञा दें तो मैं समय के भीतर उस रहस्य का पता लगा सकता हूँ ।"

उसकी बातों को सुनकर परिवार में आशा की एक नई किरण उदय हुई । वे लोग इससे सहमत हो गये । अगले दिन प्रातःकाल पिता ने बेटे को हृदय से लगा कर विदा किया । माँ ने आशीष दी और बहिनों ने टीका किया । उसने एक थैली में सोने की मोहरें ली । वह दिन भर यात्रा की तैयारी के लिये आवश्यक वस्तुएं क्रय करता रहा ।

वह संध्या को चुपचाप झील के किनारे पहुँचा । एक सुन्दर नाव ली और उसमें सामान वाली टोकरी रखकर उसे खेने लगा । चाँदनी रात थी । वायु की लहरों में संगीत की ध्वनि गूंज रही थी । झील के दोनों ओर हरे-भरे वृक्षों के घने वन थे । जब तेज हवा चलने लगी तो उसने पाल खोल दिये और कंबल ओढ़ कर गहरी नींद में सो गया ।

बड़ी सुबह को उसकी नींद टूटी । वह संभला और सावधानी से नाव किनारे की ओर खेने लगा । वहाँ पहुँच कर उसने अपने सामान की डलिया उतार ली और आगे पैदल ही यात्रा करने का निश्चय किया । वह चुपचाप सुदूर उत्तर वाली बटिया पर तेजी से बढ गया । वह नदी के किनारे-किनारे उत्तर की ओर गीत गुनाते हुये चलने लगा । राह में उसे बच्चे अखरोट के छिलके साफ करते हुये मिले । उन लोगों ने उसे अखरोट दिये । ताजे अखरोटों की गिरी काफी स्वादिष्ट थी । ग्वाले और गड़रिए अपने घोड़ों, पशुओं और कुत्तों को लेकर नीचे घाटी की ओर उतर रहे थे । धान की फसल कट रही थी । किसान कटा हुआ धान खलियानों में ले जा रहे थे । किसी खेत में शलजम

उगाने के लिये क्यारियाँ खोदी जा रही थीं। गाँव वालों ने लाल मिर्च की मालाएँ, गोभी और बैंगन सुखाने के लिये लटकाई थीं।

उस सबको देख कर वह मुग्ध हो उठा। तभी उसका ध्यान एक बूढ़े व्यक्ति की ओर गया। वह पेड़ की छाँह में सुस्ता रहा था। उसने उसके पास पहुँच कर अभिवादन किया। बूढ़े ने प्रेम से पूछा, 'बेटा, कहाँ जा रहे हो?'

'मैं गाँवों की शोभा देखने के लिये निकला हूँ।'

'बेटा, तुम मेरे साथ गाँव चलो। कुछ दिन हमारे अतिथि बन कर रहो।'

—वह उनके साथ हो लिया। दोनों आगे बढ़ गये। अब धूप निकल आई थी। दोपहर तक युवक कुछ थक-सा गया तो कुछ सोच कर बोला, क्या हम एक दूसरे को रास्ता काटने में सहायता नहीं दे सकते है।

बूढे ने मन में सोचा कि यह कैसा विचित्र लड़का है। वह चाहता है कि मैं उसे पीठ पर लाद कर ले चलूँ। शहर के लड़के सच ही अपने बड़ों का आदर करना नहीं जानते है। वह बिना कुछ उत्तर दिये ही आगे बढ़ गया।

अब वे नदी के किनारे से लगे हुये धान के खेत को पार करने लगे। धूप में पकी बालें चमक रही थी। उसने बूढ़े से पूछा, 'ये धान की बालें खाई हुई तो नहीं हैं?'

उतनी सुन्दर फसल के बारे में इस प्रकार सन्देह प्रकट करने पर बूढे को विश्वास हो गया कि उस युवक का मस्तिष्क ठीक नहीं है। इसीलिए झुंझला कर उत्तर दिया, 'मैं कुछ नहीं जानता हूँ।'

वह युवक बिना कुछ चिन्ता किए ही एक गीत गुनगुना रहा था—

'मेरा वतन एक बिहंसता फूल है.........खिलते हुए फूलों के समान लाल है.............बचपन की मुसकानों का खुशहाल है..........वतन हमारा आंखों की रोशनी है.........माँ की आँचल में ममता का स्राव है.........वतन हमारा सुनहरा गांव है............।'

गीत का स्वर गूंजने लगा। बूढ़ा मुग्ध होकर सब कुछ सुनता रहा। अब वे एक घना वन पार कर रहे थे जिसके अंत में एक बड़ा गाँव था। लड़के ने अपनी कमर से चाकू निकाल कर उसे देते हुए कहा, 'बूढ़े बाबा' कृपया इस चाकू से दो घोड़े ले आइये। यह मेरे बुजुर्गों की यादगार है इसलिए चाकू लौटा कर ले आइयेगा।'

यह कह कर चाकू उसे दिया और मस्ती में गुनगुनाने लगा।

'वतन हमारा बालेपन का यार है.........'

'वतन हमारा महकदार गुलजार है.........'

अब बूढा समझ गया कि वह लड़का उसे वेवकूफ बना रहा है। उसने उसे सिर से पाँव तक घूर कर देखते हुए कहा, 'श्रीमान्, अभी गाँव बहुत दूर है। तेजी से चलिए। रास्ते में रात पड़ गई तो भेड़िए हमें चट कर जावेंगे।'

वे चुपचाप चलने लगे। वे घंटे भर चलने के बाद अब एक कस्बे के बाजार को पार कर रहे थे। अंत में एक मस्जिद के पास पहुँच कर वहाँ विश्राम करने लगे। वहाँ लोग अपने ही में मस्त थे। अतिथियों की ओर किसी ने आँख उठा कर देखा तक नही। आराम करने और पानी पीने के लिए नहीं ।

उनके इस व्यवहार पर लड़का उठा और क्षुब्ध होकर बोला, 'यह कैसा नीरस कब्रिस्तान है ?'

'आप क्या कह रहे है ?' बूढ़े ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। अपने में गुनगुनाया, 'यह इस इलाके का सबसे बड़ा कस्बा है।'

लेकिन युवक चिल्लाया, 'भागिए-भागिए।' वह दौड़ने लगा और आगे कब्रिस्तान के पास देवदार के पेड़ की छाया में बैठ कर विश्राम करने लगा। वहाँ पर कुछ व्यक्ति एक नई बनी हुई कब्र के पास प्रार्थना कर रहे थे। उन लोगों ने उनको सम्मान पूर्वक बैठाया और खाने को दिया। ठंडा पानी देकर उनकी प्यास बुझाई।

युवक कब्रों को दिखलाकर हँसता हुआ बोला, 'देखिये, यह कितना रमणीक नगर है।'

यह सुन कर बूढा भयभीत हुआ। मन में सोचने लगा कि यह पगला जंगल को बाग, पानी को जमीन, अँधेरे को उजाला —जो मन में आया कह रहा है। आज अच्छे आदमी से पाला पड़ा है। घर के लोगों के लिए अच्छा तमाशा रहेगा।

अब वे लोग एक छोटे पहाड़ी नाले को पार कर रहे थे। उसका पानी बहुत ठंडा था। बूढ़े ने अपना जूता उतारा, पायजामा ऊपर किया। लड़का वैसे ही उसमें पैठा और सावधानी के साथ दूसरे किनारे पहुँच गया। यह देख कर बूढे को उस पर बहुत तरस आया। उससे ममतापूर्वक बोला, 'बेटा, तेरा दिमाग ठीक नहीं लगता है। जब तक तू भला न हो जाय हमारे गाँव में रह। यहाँ की अच्छी जलवायु है।'

'आपकी कृपा के लिये आभारी हूँ।' कह कर युवक ने मुस्करा कर पूछा, 'क्या आप के मकान के शहतीर मजबूत है ?'

वह कुछ आगे बढ़ा और एक चट्टान पर जम कर बैठ गया। बूढ़ा हताश होकर अपने घर चला आया। उसका उड़ा हुआ चेहरा देख कर बड़ी बेटी ने पूछा कि बात क्या है ?

बूढ़ा बोला, 'रास्ते में एक पागल लड़का मिल गया। मैंने उसे अपने घर पर ठहरने का निमंत्रण दिया तो उसने मजाक उड़ाया– क्या हमारे मकान के शहतीर मजबूत हैं।'

बेटी बुद्धिमान थी। बात समझ कर हँसी और कहा, 'पिता जी, वह बहुत समझदार है—पागल नहीं। वह जानना चाहता है कि क्या हम इतने खुशहाल हैं कि उसका ठीक आतिथ्य सत्कार कर सकें। वह किसी बड़े परिवार का लड़का लगता है।'

ठीक-ठीक, मैं अब समझा बेटा! लेकिन वह तो राह भर कई बहकी-बहकी बातें करता रहा।' यह कह कर उसने पूरी कहानी सुना दी।

बेटी बोली, 'पिता जी, वह चाहता था कि आप उसे कोई सुन्दर कहानी सुनावें जिससे रास्ता आसानी से कट जाय। बदले में वह सुनाता और इससे रास्ता काटने में आसानी होती।'

'तुम ठीक कहती हो। यह समझदारी की बात थी।'

'सुनिए धान के खेत के मालिक पर कर्जा होगा तो बालियाँ खाए हुए के समान है। आप चाकू से दो लाठियाँ काट कर ले आते तो उनको टेक कर चलते। वे घोड़ों के समान ही सहारा देतीं। जिस कस्बे वाले अतिथि का सत्कार करना नहीं जानते वह कब्रिस्तान के समान सूना है। जहाँ अतिथि को सुख-सुविधा मिले वह कब्रिस्तान नगर के समान है।'

'अब मेरी समझ में सब बातें आ गई हैं। मैं उसे बुला कर ले आता हूँ।'

'पिता जी, आप अभी न जावें। मैं नौकर के हाथ उसके लिये खाने-पीने का सामान भेजती हूँ।'

उसने एक प्याले पर मक्खन रक्खा, बारह रोटियाँ निकाली और एक बड़े लोटे पर दूध भरा। उसे नौकर को सौंप कर अतिथि को सन्देश भेजा, 'प्यारे अतिथि, पूर्णमासी का दिन है, साल में बारह महीने होते है और समुद्र लबालब पानी से भरा हुआ है, आप हमारा अतिथ्य स्वीकार करें।'

नौकर खाना लेकर निकला तो रास्ते में उसका बेटा मिला। उसने उसे एक रोटी और थोड़ा मक्खन निकाल कर दे दिया। उसे कुछ दूध भी पिला दिया। वह अतिथि के पास पहुँचा और उसे खाना सौंप कर अपनी मालकिन का सन्देश सुनाया।

वह खा-पीकर बोला, 'घर जाकर सबसे मेरा सलाम करना। अपनी मालकिन को बताना कि नया चाँद था। ग्यारह महीने दिखलाई पड़े और समुद्र का पानी घट गया है।'

नौकर ने घर पर आकर यह बात बतलाई तो उसकी चोरी पकड़ ली गई। उसे इसके लिए दण्ड दिया गया। अब बूढ़ा लड़के के पास गया और उसे आदरपूर्वक घर ले आया।

वह लड़का वहाँ एक सप्ताह रहा। एक दिन उसने बूढ़े को अपना परिचय देकर बताया कि वह क्यों अपने घर से निकला है। वह चाहता है कि हिमालय की गुफाओं में जाकर किसी योगी को ढूंढे जो यह बता-सके कि मछली क्यों हँसी थी?

वह उससे विदा ले रहा था कि लड़की वहाँ आई और बोली, "मैं यह जानती हूँ। समय पर बता दूंगी। आपको वहाँ जाने की जरूरत नहीं है।"

यह सुन कर युवक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मन में निश्चय किया कि वह उस युवती से विवाह करना चाहता है। वह राजी हो गया। बस एक दिन वे दोनों नगर के लिये रवाना हो गये।

घर पहुँच कर लड़के ने पिता को सारी बात बताई। वे उस युवती को लेकर महारानी के पास पहुँचे। महारानी यह जान कर बहुत प्रसन्न हुई कि वह लड़की मछली के हँसने का कारण जानती है।

उस युवती ने महल के भीतर वाले बाग में एक गड्ढा खुदवा कर सब दासियों को वहाँ जमा किया। उन्हें आदेश दिया कि बारी-बारी से गड्ढा पार करें। एक दासी के अतिरिक्त और दासियाँ गड्ढा पार नहीं कर सकीं।

अब युवती ने उस दासी को पकड़ा और महाराज के पास ले जाकर बोली, "महाराज, दासी के वेश में यह पुरुष किसी शत्रु ने महल में भेद लेने के लिये भेजा है। इसीलिए मछली हँसी थी।"

उस व्यक्ति ने पूछने पर बताया कि सेनापति के आदेश पर वह वहाँ राजा की हत्या करने के लिये आया है।

महाराज यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए और उस युवती की बुद्धि की सराहना की। एक दिन उन दोनों का विवाह हो गया।

अहंकार से पतन

प्रारंभ से ही गुजरात सपन्न प्रदेश रहा है। आदिकाल से, नर्मदा और ताप्ती नदी वहाँ की धरती पर उपजाऊ मिट्टी बिछाती रही है। वहाँ प्रति वर्ष सुन्दर फसलें लहलहाती हैं। कला, शिल्प और चित्रकारी मे यह प्रदेश अग्रणी रहा है। पश्चिम की ओर विशाल महासागर है, जिसके किनारे सुन्दर बन्दरगाह प्राचीन काल से ही देश के भीतर विदेशी माल पहुँचाते रहे हैं। दिल्ली, कन्नौज, पाटलीपुत्र, बंगाल, आन्ध्र, कांधार आदि नगरों में ही नहीं, यहाँ का व्यापारी नावों के

बेड़ों से समुद्र को चीर कर लंका, अरब, मलाया; सुमात्रा आदि देशों के साथ व्यापारिक संबंध बनाये हुए रहा है।

उस समय दिल्ली में मुगल बादशाहों का राज्य था। वे सुदूर पूर्व और दक्षिण तक के छोटे-छोटे राज्यों को अपने अधीन कर चुके थे। दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी और व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया था। दूर-दूर के व्यापारी दिल्ली आते और वहाँ का बाजार जड़ाऊ गहनों, बहुमूल्य वस्त्रों तथा बहुत सुन्दर सामान से पटा रहता था। कई हजार जड़िये सुनार वहाँ गहने बना कर अपनी रोजी कमाते थे। दिल्ली की निराली शान थी और वहाँ एक नई संस्कृति जन्म ले रही थी।

गुजरात के महाराज की बड़ी राजकुमारी का विवाह होने वाला था। राज्य भर में हलचल मच गई। मंत्री, सेनापति तथा अन्य कर्मचारी आवश्यक सामान एकत्र करने में जुट गये। राजा ने नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यापारियों को बुलाकर उनको अलग-अलग काम सौंप दिये।

सब काम तो आसान थे पर राजकुमारी के लिये मनपसंद गहने, जरी के कपडे तथा बहुमूल्य मणियों को एकत्र करना कठिन बात थी। नगर-सेठ से मंत्री ने बात की। गहनों, कपड़ों तथा अन्य वस्तुओं की सूची बनाई। वे प्रसन्नतापूर्वक राजाज्ञा पालन करने के लिये तैयार हो गये। दरबार से लौटकर वे कुछ चिन्तित हुए। राजाओं की बात निराली होती हैं। राजकुमारी को वस्तुएँ पसन्द आ गईं तो उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी अन्यथा उनको राजा के कोप का भाजन बनना पड़ेगा। उन्होंने अपने सबसे अनुभवी और बूढ़े मुनीम को बुलवाकर पूरी बात समझाई। विवाह के लिए अभी दो महीने बाकी थे। उन्होंने

मुनीम को सूची देकर कहा कि वे कुछ अधिक वस्तुएं ले आवें जो नये चलन की हों। राजकुमारी पसन्द कर लेगी। तो पिता उसकी बात काट नहीं सकेंगे।

महाराज ने तीन लाख तक का सामान लाने की बात कही थी। अच्छा ग्राहक पाकर सेठ जी ने पाँच लाख के माल की सूची बना कर दे दी। मुनीम जी एक सप्ताह बाद तैयार होकर आ गये। उनको अकेले जाते देखकर सेठ जी को आश्चर्य हुआ। पर वे चुप रह गये।

सेठ जी ने मुनीम को समझाया कि राह में वे कहाँ बसेरा करें। किन-किन विश्वसनीय व्यापारियों से दिल्ली में मिलें। वहाँ का व्यापारी बहुत चतुर होता है, फिर नकली और असली मणियों का भेद जानना आसान बात नहीं है। पूरा व्याख्यान सुन कर मुनीम जी ऊब गये। उनको देर हो रही थी। अतएव बीच में ही मुस्कराकर नम्रता के साथ उनकी बात काटी, 'श्रीमान् आपकी सब सलाह वहाँ काम नहीं आवेगी। दिल्ली—दिल्ली ही है। वहाँ रोज हवा बदलती रहती है। वहाँ मुझे अपनी बुद्धी से ही काम लेना होगा।' यह कह कर मुनीम ने सिर झुका कर सेठ जी को अभिवादन किया और बाहर निकल, अपने ऊँट पर सवार हो, दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

सेठ जी संसार में अपने को सबसे बुद्धिमान समझते थे। उनका नाम दूर-दूर तक फैला हुआ था। उनको लगा कि उनके कर्मचारी ने उनकी हँसी उड़ा कर अपमान किया है। वे क्रोध से तिलमिला उठे। एक अदना नौकर सिर पर चढ़ जाय। भला यह वे कैसे सहन कर सकते थे। वे उससे बदला लेने की बात पर विचार करते रहे। वे उसका घमंड चूर-चूर कर देना

चाहते थे। कुछ सोच कर उन्होंने नाई को बुलाया, अपने सिर के बाल मुड़वा लिये। उससे कहा कि उन बालों को एक ओर संभाल कर रख ले।

जब नाई चला गया तो उन्होंने वे सब बाल अपनी पत्नी को सहेजते हुए कहा कि उनको एक सुन्दर सोने की जरी वाले कपड़े में सिलकर ढीली सी पोटली बना दे और उसके चारों ओर गोटा लगाकर उस पर सलमे-सितारे टाँक दे। सेठानी ने उनके कहने के अनुसार ही सब काम निपटा कर उनको पोटली बनाकर दे दी। उसे देखकर वे प्रसन्न हुए और नौकर से कहा कि तुरंत छोटे मुनीम को बुला कर ले आवे। उनसे कह दे कि उनको आज ही दिल्ली के लिए रवाना होना है। पूरी तैयारी करके आवें।

छोटा मुनीम बेईमान तथा चापलूस था। वह बड़े मुनीम से मन-ही-मन बहुत जलता था। सेठ जी का संन्देश पाकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह ठाट-बाट के साथ वहाँ पहुँचा और बोला, "मैं उपस्थित हूँ, सेवा करने का अवसर प्रदान करें।"

सेठ जी ने उसे पूरी बात बता कर कहा वे बड़े मुनीम को दंड देना चाहते हैं। वह तुरंत मुनीम के पास दिल्ली चला जावे और पोटली उनको देकर कहे कि शहनशाह को उनकी ओर से भेंट कर दें। उसने उनके आदेश का पालन करने का आश्वासन दिया और प्रसन्न चित्त यात्रा के लिये रवाना हो गया।

बड़े मुनीम दिल्ली पहुँचे और जौहरियों तथा व्यापारियों से मिले। उनको बताया कि उनके सेठ सुदूर पूर्व के टापुओं में यात्रा करने के लिए जा रहे हैं इसलिए बाजार का भाव जानना चाहते हैं। सोना, चाँदी, हीरे, लाल तथा अन्य मणियों की

उन्होंने परख की। जारी, किमखाब तथा ऊनी, सूती वस्त्र देखे। उनका विचार था कि एक सप्ताह तक बाजार का भाव देख लिया जावे और फिर सभी वस्तुएँ क्रय कर ली जायें। तभी छोटे मुनीम जी ने पहुँच कर उनको सेठ जी का सन्देश बताया और उपहार वाली गठरी दे दी।

बड़े मुनीम स्वयं ही बादशाह सलामत से मिलने की बात सोच रहे थे और उनको भेंट में देने के लिए कुछ मणि चुन चुके थे। अब उन्होंने वे सब मणि क्रय किये और एक सोने की थाली पर सेठ जी द्वारा भेजी गई पोटली के साथ रखकर अगले दिन राज दरबार में पहुँच गये। छोटा मुनीम जान-बूझ कर उनके साथ नहीं आया। वह उस समय सामान खरीदता रहा और फिर घबराहट में जल्दी ही उसने दिल्ली छोड़ दी।

बड़े मुनीम ने दरबार में बादशाह सलामत को भेंट स्वीकार की और गुजरात के महाराज और नगर-सेठ की कुशल-क्षेम पूछीं। मुनीम जी ने झुककर बादशाह को कई बार सलाम कर संक्षेप में पूरी बात बताई और लौटकर दरबार में एक स्थान पर बैठ गये। जब सब लोगों से भेंटें प्राप्त हो चुकी तो दरबार आरम्भ हुआ। सेठ जी वाली गठरी खोली गई तो उसमें से सूखे हुये बाल उड़ने लगे।

यह देख कर मुनीम जी अपने सेठ की करतूत समझ गये। उधर बादशाह ने यह देखा तो आग बबूला हो उठे। ताव में बोले, "सेठ की यह हिमाकत है कि वह दिल्ली के तख्त की बेइज्जती करे। तुरंत मुनीम की गरदन उड़ा दी जावे।"

मुनीम इस सबसे उत्तेजित न होकर आगे बढ़ा और एक-एक बाल उठा कर माथे से लगा, अपने अँगरखे के पल्ले में

सँभालने लगे। बादशाह सलामत के आगे सात बार सलाम कर उसने विनती की "हे दुनिया के शाहँशाह, आप बहुत रहमदिल हैं। मेरी आपसे एक आखरी विनती है। मुझे मरने के बाद इन बालों के साथ जलाया जाय ताकि सीधे बहिश्त पहुँच जाऊँ। इस गुनहगार को फिर दूसरा मौका नहीं मिलेगा।"

सब बालों को उठा कर उसने अँगरखे के पल्ले से बाँध लिया और सेनापति के आगे सिर झुकाकर निवेदन किया कि उसकी गरदन तुरन्त काटी जाय। वजीर ने देखा तो बादशाह को समझाया इसमें जरूर कोई रहस्य है। बादशाह का क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने मुस्करा कर पूछा "हे इन्सान, तू क्या कहना चाहता है, सच-सच बता, ताकि हम सही इन्साफ कर सकें।

मुनीम जी की घिग्घी बँध गई। वे गद्गद स्वर में बोले, "जहाँपनाह, आपको यह भेंट एक मजाक लग सकती है, लेकिन गुजरात की जनता के दिल में आपके लिए जो इज्जत है वह सेठ जी जानते हैं। इन बालों के आगे बड़े-बड़े बादशाहों के खजाने भी बेकार हैं।"

सब दरबारी आश्चर्यचकित रह गये। बादशाह मुनीम की ओर देखने लगे। वह पागल की भाँति बार-बार उन बालों को माथे से लगाकर उस पोटली को चूम रहा था।

वजीर समझ गया कि वे तिलस्मी बाल हैं। वे आगे बढ़े और मुनीम जी को गले से लगाकर बोले, "मुनीम जी, बादशाह सलामत ने तुमको माफ कर दिया है। आला हजरत इन बालों के बारे में जानना चाहते हैं।

मुनीम जी ने कहा, "हे रहमदिल बादशाह, सेठ जी गिरिनार की यात्रा को पिछले साल गये थे। वहाँ उन्होंने साधु-सन्तों की सेवा की। एक बूढ़े सन्त ने खुश होकर अपनी दाढ़ी के बाल सेठ जी को देकर कहा कि उसे सदा अपनी तिजोरी में रखें। इससे वह कभी खाली नहीं होगी।

बादशाह अवाक् सब कुछ सुनते रहे। मुनीम कह रहा था, "जब मैं यहाँ आने लगा तो वे बोले, मुनीम जी, हमारे शाहँशाह सारी दुनिया के मालिक हैं, यह तोहफा उनके खजाने में रहना चाहिए। हम उनके सामने कुछ भी नहीं है। वही मैंने आपकी सेवा में भेंट किया है।"

वजीर यह सुन कर बहुत प्रभावित हुए। बात सच लगती थी। उसने बादशाह को समझाया और खजांची को हुक्म दिया कि बालों को जवाहरातों से लदे हुए डिब्बे में बन्द कर खजाने में रखा जाय।

दरबार से विदा लेकर मुनीम जी ने आवश्यक वस्तुएँ क्रय की और जाने से पहले शाहँशाह से विदा ली। बादशाह ने गुजरात के राजा, सेठ जी और उनको बहुमूल्य भेंटें दीं। वजीर ने उनके साथ पच्चीस शाही ऊँट और दो सौ सिपाही कर दिये ताकि वे अपने नगर तक सुरक्षित पहुँच जावें।

एक महीने के बाद मुनीम जी पूरा काफिला लेकर सेठ जी के दरवाजे पर पहुँच गये। सेठ जी उनको देख कर अचम्भे में पड़ गये। उनको छोटे मुनीम ने लौटकर बताया था कि बादशाह ने बड़े मुनीम की गरदन काटने का हुक्म दिया है। वह अपने साथ बहुत-सा समान भी लाया था, जिसमें ज्यादातर माल नकली था

सेठ जी की समझ में नहीं आया कि उनका मुनीम बच कर कैसे चला आया है। मुनीम ने सब सामान उतार कर उनको दे दिया और बादशाह ने जो भेंट दी थी वह भी समर्पित कर दी। इसके बाद उसने कहा, "सेठ जी, बहुत दिनों तक आपका नमक खाया। आज उऋण हो गया हूँ। अब आपके यहाँ नौकरी नहीं करूँगा।"

मुनीम अपने घर आया और सुस्ताने लगा। तभी उसने देखा कि सेठ जी वहाँ आ पहुँचे थे। उनके अनुरोध पर उसने पूरी बातें बता दीं। उसकी बुद्धिमानी की बात सुनकर सेठ जी का गर्व चूर-चूर हो गया। अब उनको अपनी भूल ज्ञात हो गई। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि परदेश में अपनी बुद्धि के भरोसे ही मनुष्य को चलना चाहिए। उसे कोई सीख देनी व्यर्थ बात है।

अन्त में मुनीम जी ने कहा, "सेठ जी, धन और दौलत के भरोसे ही संसार के सब काम नहीं चल सकते हैं। समय पर अपनी समझ का ही भरोसा किया जा सकता है।"

राजकुमारी सुन्दर आभूषणों को पाकर बहुत प्रसन्न हुई और मुनीम जी का गुजरात के राजदरबार में भी सम्मान बढ़ गया।

●

त्याग की भावना

बहुत पुरानी बात है। मद्रास प्रदेश में कावेरी नदी के समीप एक गाँव बसा हुआ था। गाँव और नदी के बीच मुरमुरे पत्थर की चट्टानों वाली पहाड़ी थी। पहाड़ी की चट्टानों में ताँबा, राँगा, सुरमा, फिटकरी आदि धातुएँ थीं, जिन्हें गाँव वाले निकाला करते थे। गाँव के आसपास फल-फूलों के वृक्षों के कारण हरियाली थी, जिसमें लगी हुई धरती बबूल, झड़बेरी आदि की झाड़ियों से भरी हुई थी। उसके बीच कहीं-कहीं नारियल के पेड़ खड़े मिलते थे। इसके अतिरिक्त चारों ओर बंजर था।

पहले गाँव के उत्तर की धरती में काली मिट्टी थी। इसीलिए वहाँ कपास बोई जाती थी। अब वह मिट्टी भूरी पड़ गयी है। इसलिए उसमें कुछ नहीं उपजता है। गाँव के दक्षिण की ओर एक पहाड़ी नाला है, जो बरसात के अतिरिक्त साल भर सूखा पड़ा रहता है। बरसात में वह वेग के साथ पानी को तालाबों की ओर बहाता हुआ सुदूर नीचे की ओर नदी में मिल जाता है। गांव के पास जिन खेतों में सिंचाई के साधन हैं, उस धरती पर इमली, नारियल, केला आदि के बाग हैं। उनके पास के नमी वाले खेतों में चावल, गन्ना, तम्बाकू मिर्च, गेहूँ आदि फसल होती है। बाकी जमीन पर कम्बू, चोलम पैदा होती है।

उन दिनों इस गाँव में एक साधारण किसान परिवार रहता था। उसके सात लड़के और एक लड़की थी। लड़की का नाम अक्कम्मा था। वह बालिका माता-पिता और सभी भाइयों का दुलार पाकर बड़ी हुई। बचपन में वह राजकुमारी की भाँति उनकी गोदी में किलकारी मारती थी। अपनी लाडली बेटी को माता-पिता आंखों से दूर न होने देते थे। उसका कोई हठ व्यर्थ नहीं जाता था। अक्कम्मा माता-पिता और भाइयों का स्नेह पाकर पन्द्रह साल की हो गई।

पिता खेती करते। लड़के उनको सहायता देने के अतिरिक्त वनों से शिकार मार कर लाते। माँ घर की देखभाल करती और बेटी उसका हाथ बँटाती थी। बहुधा बेटे कावेरी नदी के खादिर में शिकार खेलने के लिए निकल जाते और कभी-कभी तो एक सप्ताह के बाद लौटते थे। जंगल में बेर, बबूल, जंगली खजूर आदि की झाड़ियों के बीच तीतर, घुग्घू, तोते, मुरगी आदि पक्षियों की भरमार रहती थी। घने वन तो बाघ, हाथी, काला रीछ, जंगली सुअर आदि पशुओं से भरे हुए थे। यदा

वे जीवित तोता या घुग्घू पक्षी पकड़ कर ले जाते। कई हिरन के बच्चे भी उन लोगों ने पाल लिये थे। अक्कम्मा उनसे खेलती रहती थी।

जब वे शिकार की यात्रा से लौटते तो जंगल की कहानी सुनाते, जिसमें हरे-भरे वन सुन्दर झरने, रमणीक चारागाह आदि का मनमोहक वर्णन होता। कभी पेड़ पर शहद खाते हुए काले रीछ से भिड़न्त की बात होती या जंगली सुअर का शिकार करने वाले मोर्चे का हाल। अक्कम्मा का मन वन की शोभा देखने के लिए ललचाता। वह भाइयों के साथ जाने का आग्रह करती पर वे यह कह कर टाल देते थे कि अभी उसका अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी ज्ञान अधूरा है।

अब अक्कम्मा सत्रह साल की युवती थी। एक दिन उसने जब माता-पिता से कहा कि वह भाइयों के साथ शिकार खेलने के लिए जावेगी, तो वे उसका आग्रह ठुकरा नहीं सके। भाइयों ने उसे समझाना चाहा, पर असफल रहे। हारकर उन्होंने उसे साथ ले जाना स्वीकार कर लिया। उसके लिए सुन्दर घोड़ा चुना और तीर-कमान ढाल-तलवार दिये।

अब आगे तीनों भाई फिर अक्कम्मा और उसके पीछे भी चार भाई सुन्दर सजे हुए घोड़ों पर सवार थे। उन्होंने आवश्यक अस्त्र-शस्त्र तथा खाने-पीने की सामग्री ले ली थी। वे प्रभात वेला में चुपचाप वन की ओर बढ़े। सूर्य की पहली किरण की लाली से अक्कम्मा के हाथ की तलवार चमक उठी।

पहले उसकी मुठभेड़ एक जंगली सुअर से हुई। उसने उसे मार डाला। यह देखकर सब भाई दंग रह गये। उनको

विश्वास हो गया कि उनकी बहिन युद्ध करने की पूरी क्षमता रखती है।

धीरे-धीरे वे भयानक जंगल के बीच पहुँच गये। वहाँ उन्होंने जंगली सुअर और हिरन मारे, साही और खारपुस्तों का ढेर लगा दिया। इस बीच दोपहर हो आयी। वे सब बहुत थक गये थे। भूख और प्यास के कारण सब के चेहरे मुरझा गये थे। वे पानी ढूँढ़ते हुये आगे बढ़ गए। दूर उनको एक ताल दिखाई पड़ा। उन्होंने निश्चय किया कि उसी के पास कहीं छायादार स्थान पर बैठकर सुस्तावेंगे।

उस वर्ष कड़ी गरमी पड़ी थी और अभी तक मेंह बरसने के कोई लक्षण नहीं थे। ताल-तलैया सूख गई थीं। चारों ओर सूखा पड़ा था। वे सब तालाब से कुछ दूर पेड़ों के पास झुरमुट में अपने घोड़ों से उतर पड़े। घोड़ों पर से सब सामग्री उतार कर उनको चरने के लिए छोड़ दिया। अक्कम्मा ने पानी का बरतन उठाया और भाइयों के मना करने पर भी अकेले ही पानी लेने के लिये चल पड़ी। उसके चले जाने पर सब भाइयों ने धरती पर कंबल बिछाया और लेट कर आराम करने लगे। वे थके मांदे तो थे ही उनको नींद आ गई।

वह तालाब जितना समीप दीख रहा था, उससे कहीं अधिक दूर था। उसमें एक बरसाती नाला बहता था, जो उस समय सूखा पड़ा था। नाले के बीच शिकारियों और पशुओं के तालाब तक आने-जाने के कारण एक प्राकृतिक बटिया बनी हुई थी। वह उस बटिया पर चुपचाप बढ़ती चली गई। बड़ी दूर जाने पर उसे तालाब का गंदला पानी मिला, जिससे उसे बड़ी निराशा हुई। लेकिन कोई चारा नहीं था। उसने अपनी

कमर पर कसी हुई चादर खोल ली और उससे पानी छानकर बरतन भरा। अब वह धीरे-धीरे बटिया पर चलने लगी।

यह मन-ही-मन सोच रही थी कि उसके प्यारे भाई प्यास से व्याकुल होंगे, यह भी सम्भव है कि बेहोश पड़े हों। उसका हृदय करुणा से भर आया। सुदूर दक्षिण की ओर से उसे काले बादल से आते हुये दिखलाई पड़े। पर उसने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

उस दिन सुबह को सुदूर पहाड़ों में पहला मेंह बरसा था। एकाएक उस नाले में ऊपर की ओर से पानी आने लगा। उसके साथ कंकड़, पत्थर और छोटे-छोटे पौधे बह कर एक विचित्र ध्वनि पैदा कर रहे थे। उसने दूर से वह भयानक स्वर नीचे की ओर आता हुआ सुना, पर अनुभव हीनता के कारण अनुमान नहीं लगा सकी कि वह मृत्यु की पहली पुकार है।

उसके भाइयों की नीद टूट गई। वह गूंज उनके हृदय में एक अज्ञात भय पैदा करने लगी। वे समझ गये कि वह पहले बरसात की भारी बाढ़ थी। वे घबराहट में आगे बढ़े, तेजी से दौड़ कर किनारे की ओर बढ़ गये। सुदूर उनको अकम्मा आती हुई दीख पड़ी। वे चिल्लाये "बहिन, किनारे की ओर बढ़ जा। नदी में बाढ़ आ गई है।"

अक्कम्मा ने भाइयो की ओर देखा और समझा कि वे प्यास से बहुत व्याकुल हो उठे हैं। उसे यह ज्ञात नहीं था कि उस सूखे नाले में बरसाती मेंह वेग के साथ प्रवेश कर चुका है। वह तो तेजी से उस बटिया पर आगे बढ़ने लगी।

उसके भाई आगे की ओर दौड़े, लेकिन अक्कम्मा तो बरसाती बाढ़ के बीच फँस चुकी थी। बहिन ने भाइयों की ओर

देखा—अपने विवश भाइयों को और उनके देखते-ही-देखते वह उस पानी के सागर में बह गयी। उसके भाई असहाय-से किनारे पर खड़े-खड़े सब कुछ देखते भर रह गये। वे अपनी प्यारी वहिन की रक्षा नहीं कर सके।

वह नदी तालों को भरती हुई दूर धरती पर फैल गई। भूखी धरती ने अपनी प्यास बुझाने के लिए उसका स्वागत किया। धरती को जीवन-दान देने वाली वह नदी एक प्यारी वहिन को अपनी गोदी में समाकर, सुदूर दक्षिण की ओर कावेरी नदी से मिलने चली गई। वे भाई प्रकृति की इस क्रूरता पर विवशता से सहम खड़े-के-खड़े ही रह गये। फिर वे एकाएक विलाप करने लगे। उनकी गाथा को सुनकर धरती काँप उठी। पशु और पक्षी आश्चर्य-चकित होकर उनको ताकते हुए रह गये। बाढ़ का पहला वेग समाप्त हो गया। पानी की धार कलरव स्वर में निनाद करके बहने लगी। वे मूक उस ओर देखते रह गये। रिमझिम मेंह बरस रहा था।

अक्कम्का लौट कर नहीं आई। एक भाई ने करुण स्वर में कहा, "बहिन वेगवती बरसाती नदी की पहली भेंट बन गई।" सम्भवतः वह न जानता था कि मानव ने प्रकृति से संघर्ष कर आज तक लाखों करोड़ों पुत्र-पुत्रियों को खोकर प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है।

वे चुपचाप अपने घोड़ों पर चढ़कर अनमने मन से गाँव लौट आये। उन्होंने एक कारीगर से अपनी वहिन की मूर्ति बनवाई और अगले वर्ष बरसात के पहले उस तालाब के पास एक ऊँचे स्थान पर उसे स्थापित किया। उस दिन उन्होंने एक बड़ा समारोह मनाकर सात घोड़ों की बलि दी, अन्त में दुखी मन से

तालाब की मेड़ों के पास बैठकर बहिन की आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की ।

तब से प्रतिवर्ष बहिन को सात घोड़ों की बलि देने का चलन हो गया । उसी समय से बेड़ोत्सव मनाने और दूध-भात समर्पित करने की प्रथा चल पड़ी । लोगों का विश्वास है कि इससे समय पर मेंह बरस जाता है और उस भाग में कभी अकाल नहीं पड़ता ।

उस प्रदेश के सभी गाँवों में किसानों द्वारा आगे वह प्रथा अपना ली गई । लेकिन वे आज सात घोड़ों की बलि न देकर सात मिट्टी के बने हुए घोड़े तालाब को भेंट चढ़ाते हैं । साथ में दूध-भात भेंट में देते हैं । उन घोड़ों पर विभिन्न रंग का गोदना किया जाता है । इसीलिए उस उत्सव का नाम 'बहिन का गोदना पड़ गया है । इन घोड़ों की मूर्तियों को गाँव के कुम्हार बड़ी सुन्दरता से बनाते हैं । उस समारोह में पूजा करने वाला पुजारी घोड़ों का शृङ्गार कर उनके आगे माथा झुकाता है ।

गाँवों मे तालाब की मेड़ों पर 'बहिन का निकुंज' होता है । वह कुंज बहुत घना होता है । लोगों का विश्वास है कि बहिन की महिमा के कारण ही समय पर अच्छी वर्षा होती है । बहिन का वह त्याग आज तक उस आवाज को एक नई प्रेरणा देता है ।

यदि किसी वर्ष वर्षा न हुई तो बहिन के लिए गोदाना रंगोली करना भर काफी है । दूध-भात ले जाने वालों के घर लौटने तक मेंह की बूंदे आ जाती हैं और उनके झाबे पानी से भर जाते हैं ।

वह त्याग की राह उस समाज के युवकों को आज तक बल प्रदान कर नयी प्रेरणा देती है ।

●

विधाता की हार

मद्रास में कावेरी नदी में, होगेनगल' नामक बड़ा जलप्रपात है, जहाँ नदी बड़े वेग से नीचे चट्टानों पर गिरती है। उस प्रदेश में चोल राज्य के प्रतापी राजा कारिकालन हुए। उन्होंने अपने सिपाहियों, कैदियों और देशवासियों की सहायता पाकर श्रीरंगल से लेकर समुद्रतट तक नदी के दोनों किनारों पर लगभग सौ मील लम्बा बाँध, बाँध कर उससे कई छोटी-छोटी नहरें निकालीं। इससे वहाँ की धरती सोना उगलने लगी और राज्य धन-धान्य से भर गया।

महाराज करिकालन के समय में सीता पर्वत के निकट वाले गाँव में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। आदि काल से सरस्वती और लक्ष्मी जी की शत्रुता चली आ रही है। इसीलिए

वह ब्राह्मण निर्धन था। उसके घर में नित्य अन्न तथा वस्त्र का अभाव रहता था। वह प्राचीन परंपरा के अनुसार अपने शिष्यों को पढ़ाया करता। जो शिष्य उसके साथ रहते, वे गांव-गांव जाकर भिक्षा एकत्रित करके लाते थे। उससे बड़ी कठिनाई के साथ सबकी गुजर होती थी।

एक दिन ब्राह्मणी ने ताना मारा कि उसके पिता ने एक भिखमंगे के साथ उसका विवाह करके जीवन नष्ट कर दिया है। ब्राह्मणी को बच्चा होने वाला था। वह बहुत चिन्तित थी कि उसका लालन-पालन कैसे होगा ? यह बात ब्राह्मण के मन में चुभ गई। उसने अकेले में सबसे प्रिय शिष्य को बुला कर सारी स्थिति समझाई। उसे बताया कि वह राजधानी जा कर अपना भाग्य आजमाना चाहता है। चार पांच महीने में लौट कर आ जायगा। तब तक वह उनके स्थान को ग्रहण कर शिष्यों को शिक्षा देता रहे।

शिष्य की समझ में बात आ गई। उसने आश्वासन दिया कि वह ब्राह्मणी को कोई कष्ट नहीं होने देगा। शिष्य समुदाय को भी ऐसा आभास न होने देगा कि गुरु जी नहीं हैं। ब्राह्मण चुपचाप रात्रि को घर से निकल कर चला गया।

सुबह ब्राह्मणी की नींद टूटी और पति को न पाया तो पूछ-ताछ की। जब उसे सब बात ज्ञात हुई तो वह रोने लगी। शिष्यों ने गुरुमाता को समझाया कि उनको कोई कष्ट नहीं होगा। जब गांव वालों को यह बात हुई तो सब लोगों ने मिलकर उनके यहां बहुत-सा खाने-पीने का समान इकट्ठा कर दिया। शिष्य ने गांव की एक बूढ़ी औरत को उनकी सेवा करने के लिए रख लिया।

एक दिन रात्रि को ब्राह्मणी ने पुत्र को जन्म दिया। बच्चे की पहली किलकारी सुनकर शिष्य की नींद टूट गई। वह उठा और सोचा कि गाँव के बुजुर्गों से इस पर सलाह ले ली जाय कि आगे क्या व्यवस्था की जाय। उसने चुपके से दरवाजा खोला।

तभी उसने देखा कि माथे पर राख मले, जनेऊ पहने हुए एक दुबले-पतले ब्राह्मण लाठी टेकते हुए चले आ रहे हैं। शिष्य ने समझा कि वह भिखारी है। चिढ़ कर बोला, 'भाई, आप आधी रात को कैसे टपक पड़े हो!'

'बेटा, मैं भिखारी नहीं हूँ।'

'तो कौन हो और इस भांति रात्रि में यहां चले आये?'

'मैं अपने कार्य से आया हूँ। मुझे भीतर आने दो।' यह कह कर वह दरवाजे के भीतर घुसने लगा।

शिष्य दरवाजे पर दोनों हाथ फैला रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। वह अनजान व्यक्ति क्या इस भांति भीतर चला जाना चाहता है, यह बात उसकी समझ में नहीं आई। पहले तो उसे बहुत क्रोध आया किन्तु फिर विवेक के साथ कहा, 'लगता है कि आप गुरु जी के कोई पुराने साथी हैं। गुरु जी आजकल राजधानी में हैं। हम आपका आतिथ्य न कर सकेंगे। हमारी आर्थिक स्थिति स्वयं भली नहीं है।'

'आप मुझे अपना काम करने दें। भले कामों में विघ्न डालना उचित नहीं लगता है।'

'ऐ मूर्ख, तू तो सीनाजोरी पर उतारू हो गया है। भाग जा, नहीं तो गरदनी देकर निकाल दूँगा।' शिष्य को ताव आ गया।

'बेटा, तुम बावले हो। इस घर में एक बच्चा पैदा हुआ है। मुझे उसके भाग्य की रेखायें माथे पर खींचनी हैं।'

'भाई, तुम जरा सोचो कि तुम किस स्थिति में एक असहाय स्त्री के पास जाओगे ?'

'विधाता को आज तक कोई नहीं रोक सका।' कह कर वह व्यक्ति खिलखिला कर हँसा और भीतर खिसक गया।

वह व्यक्ति जब लौट कर आया तो शिष्य ने उसे पकड़ लिया और पूछा, 'महाराज, आपने गुरुभाई के भाग्य में क्या लिखा है।'

पहले तो वह व्यक्ति चुप रहा। छुटकारे की कोई संभावना न देख कर बोला, 'सुनो, यह लड़का बहुत दरिद्र होगा। इसके घर में एक बोरा अन्न और एक गाय से अधिक कुछ नहीं रहेगा।' यह कहकर उस व्यक्ति ने अपना पीछा छुड़ाया और आगे बढ़ कर ओझल हो गया।

—कुछ महीने के बाद गुरु जी लौट कर घर आए। वे काफी धन कमा कर लाए थे। एक-दो साल घर पर रह कर आराम से दिन काटे। वे कोई काम-धंधा तो कर नहीं रहे थे। जो थोड़ी-सी पूँजी जमा करके लाए थे कब तक चलती। अंत में एक दिन भीख माँगने की नौबत आ गई।

ब्राह्मण तो किसी भाँति दिन काट रहा था पर ब्राह्मणी ने सुझाया कि इस भाँति काम नहीं चल सकता है। एक बच्चे का भली-भाँति लालन-पालन नहीं हो पा रहा था कि उसके कुछ महीने बाद दूसरा बच्चा होने वाला है। उस कंगाली में दिन कैसे कट सकते हैं ?

शिष्य ने गुरु जी को सलाह दी कि वे फिर राजधानी चले जावें। अपने-पुराने जजमानों के घर पूजा कर के धन कमा लें। वे उसकी बात मान कर कुछ दिन बाद राजधानी चले गये।

शिष्य निष्ठापूर्वक अपना कर्त्तव्य निभाता रहा। गुरु-पत्नी पति के चले जाने पर दुःखी हुई। पर कोई चारा भी नहीं था। उसे अपने बच्चे के भविष्य की चिन्ता थी। बच्चा दो वर्ष का हो गया और अपनी माँ को टुकर-टुकर कर देखता था।

ठीक समय पर ब्राह्मण के घर कन्या का जन्म हुआ। सायंकाल का समय था। शिष्य पूजा करने की तैयारी कर रहा था कि दासी ने सूचना दी। वह चुपचाप अपने ध्यान में आँखे मूँदें हुए रमा था कि उसने खड़ाऊँ की खटर-पटर सुनी। उसका ध्यान उचट गया। उसने आँखें खोलीं तो पाया कि वे ही पुराने देवता महाराज लाठी टेकते हुए घर में प्रवेश कर रहे हैं।

इससे पहले कि शिष्य उनको रोके वे चुपचाप भीतर चले गये। पहले तो शिष्य को बहुत गुस्सा आया। लेकिन वह लाचार था। जब वे लौट कर बाहर आए तो चुटकी ली, 'कहो महाराज, अब के कौन-सा तीर मारा है?'

वे इस पर मुस्कराए और कहा, 'देख भाई, सबका अपना-अपना धन्धा होता है। इसमें चिढ़ने की कोई बात नहीं है? यहाँ लड़की पैदा हुई है इसीलिए मुझे विवश होकर आना पड़ा है।'

'लड़का हो या लड़की, इससे तुम्हारा क्या संबंध है?' शिष्य झुंझला उठा।

'मुझे लड़की के माथे पर भाग्य की रेखाएँ अंकित करनी थीं।'

'तो क्या करतब कर डाला—यह तो बताओ?' उसने खिसिया कर पूछा।

'क्या मुँह बना कर अपशकुन कर रहा है । मैं डींग नहीं हाँकता हूँ । इस लड़की का विवाह नहीं होगा । रोज़ कोई न कोई मँगनी करने के लिये आवेगा, पर अन्त में रहेगी वह आजीवन क्वाँरी ।'

'जा—जा, भाग !' शिष्य ने उसे खदेड़ा ।

ब्राह्मण मुस्करा कर लम्बे डग भरता हुआ आगे बढ़ गया। बड़ी देर तक खड़ाऊँ की खट-खट-खट शिष्य के कानों में गूँजती रही। अब उसका मन पूजा करने पर नहीं लगा। वह विधाता की रेखाओं पर सोचता हुआ गुरुभाई और बहिन के भविष्य के लिये बहुत चिन्तित हुआ ।

एक, दो, तीन, चार, पाँच इस भाँति कई वर्ष बीत गये। ब्राह्मण घर लौट कर नहीं आया। राजधानी से एक व्यक्ति आया और उसने बताया कि वे मर गये हैं। किसी ने बताया कि ब्राह्मणी के तेज स्वभाव के कारण उन्होंने संन्यास ले लिया और अपने गुरु के साथ कैलास की यात्रा पर चले गये हैं। धीरे-धीरे तेरह-चौदह साल बीत गये। लोग अब तक उनको भूल गये थे।

शिष्य ने गुरु परम्परा निभाई। उसने उनके बच्चों को शिक्षा दी और परिवार का धर्म निभाकर गाँव और बाहर से चेले एकत्र करके उन सबको वेद, पुराण आदि पढ़ाए। घर की ऐसी व्यवस्था करदी कि ब्राह्मणी को कोई कष्ट नहीं हुआ। लोग उसकी सराहना करके समय-समय पर मदद दे दिया करते थे। उसका मान दूर-दूर तक होने लग गया था।

शिष्य ने गुरुभाई का उपनयन संस्कार ग्यारह वर्ष की अवस्था में बड़ी धूमधाम से किया। अब वह बीस साल का हो

गया था। लोग उसकी प्रतिष्ठा करने लगे। एक दिन शिष्य ने आस-पास के गाँवों के लोगों को बुला कर बताया कि उनका गुरुभाई सभी विद्याओं में पारंगत हो गया है। वह उसे वहाँ का कार्य सौंप कर विदा लेना चाहता है। लोगों ने उसे रोकने की चेष्टा की पर सफ़ल नहीं हुये। उसने कहा कि उसका कर्त्तव्य पूरा हो गया है।

ब्राह्मणी के समझाने पर भी वह नही माना। अंत में गुरु-पत्नी ने उसे आशीर्वाद देकर विदा किया। बहिन फूट-फूट कर रोती रही। भाई उसे बड़ी दूर तक पहुँचाने के लिये गया। जब वह उसके चरणों की धूल ले रहा था तो शिष्य बोला, 'बन्धु, तुम समझदार हो गये हो। मेरी दो बातों पर ध्यान रखना। पहली यह है कि घर पर कभी अन्न से भरा हुआ बोरा और दूध देने वाली गाय न रखना, अन्यथा तुम सदा निर्धन रहोगे।'

उसने यह आदेश पालन करने का आश्वासन दिया तो दूसरी बात बताई कि जब कोई व्यक्ति उसकी बहिन के विवाह के संबंध में बातें करने के लिये आवे तो उससे सौ मोहरें लेकर बात करना और तब उसे लड़की दिखाना।

लड़के ने रुँधे हुये स्वर में उनकी आज्ञा का पालन करने का वायदा किया। वह भारी मन घर लौट कर आया। उस दिन परिवार में सभी लोग उदास रहे। बड़ी रात तक उसके कर्त्तव्य परायणता की ब्राह्मणी सराहना करती रही।

अगले दिन गाँव के बनिए ने एक दूधारू गाय और एक बोरा अनाज पुरोहित परिवार को भेजा। लड़के ने तुरन्त गाय बेंच दी और अनाज एक व्यापारी के यहाँ भेज दिया। कहलाया कि जब आवश्यकता होगी पैसे मँगवा लेगा। लेकिन आगे रोज गाएँ आने लगीं और अनाज के बोरे। वह उनको बेच कर धनी हो गये।

कन्या सयानी हो गई थी। उसको देखने वाले भी आने लगे। प्रत्येक व्यक्ति से उसका भाई एक सौ सुवर्ण मुद्राएँ ले लेता था। एक महीने में ही उन लोगों ने एक बड़ी हवेली बनवा ली। अब वे सम्पन्न परिवार वालों के समान जीवन व्यतीत करने लगे। ब्राह्मणी हाथ खोल कर दान करती थी।

—कई वर्ष बीत गये थे। एक दिन शिष्य के मन में बात उठी कि उस परिवार का हाल जाना जाय। वह वहाँ के लिये रवाना हो गया और संध्या को गांव के पास पहुँचा। वह चुपचाप गांव की बटिया पर बढ़ रहा था। तभी उसने देखा कि वे ही ब्राह्मण देवता माथे पर त्रिपुण्ड लगाये गांव की ओर एक गाय और बाछी को हांकते हुये लिए जा रहे हैं। उनके कंधे पर अनाज का बोरा और हाथ में एक थैली थी।

उसने जोर से पुकारा, 'महाराज, ठहरिये। आज कहाँ भूल पड़े? मैं आज आ रहा हूँ।'

वे रुक गये। शिष्य ने हंस कर पूछा, 'महाराज, आपकी सवारी कहां जा रही है?'

यह सुनकर ब्राह्मण गुस्से में बोला, 'ओ धूर्त, तूने मेरे सिर पर यह क्या मुसीबत डाल दी है। रोज एक दूध देने वाली गाय, एक बोरा अनाज और सुवर्ण मुद्राएँ जमा करते-करते मेरा कचूमर निकल रहा है। समझ में नहीं आता कि इससे कैसे छुटकारा पाऊँगा? तूने तो मुझे अच्छा छकाया है।'

इस पर शिष्य गंभीर होकर बोला, 'देवता, यह कलयुग है। आज मनुष्य ने अपनी बुद्धि और सामूहिक शक्ति से संसार को खुशहाल बना लिया है। अब उसे आपकी भाग्य रेखाओं की अधिक चिन्ता नहीं रह गई है। वह स्वयं भाग्य रेखाएँ बनाता है।'

ब्राह्मण चुपचाप सुनता रहा और अब बोला, 'बेटा, तेरी बुद्धि के आगे मैं हार गया हूँ। अब कोई ऐसा रास्ता बता कि मैं इस झंझट से छुटकारा पा जाऊँ।'

'महाराज, मेरी सलाह तो यह है कि आप ऐसी रेखाएँ आगे मिटा डाला करें जिनसे आपको कष्ट होता है।'

'रेखाएँ मिटा डालूं ? हे भगवान, यह कैसे होगा ? यह कार्य न जाने कितने युगों से करता आ रहा हूँ।'

'तो महाराज झंझट उठाइये, मैं चला।'

'नही बेटा, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। कुछ तो इस बात पर विचार कर ले।'

'तो सुनिये महाराज, मैं गुरुभक्त हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि उनके परिवार की रक्षा करूँ। मैं वही कर रहा हूँ। इस बार मैं अपनी बहिन की शादी के लिये लड़का तय कर आया हूँ। आप तो स्वयं ही कन्यादान का महत्त्व जानते हैं। इसीलिये आपको भी समझौता करना होगा। तभी हमारा आपसी झगड़ा निपट सकता है।'

ब्राह्मण देवता कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे। अब नम्र होकर बोले, ले बेटा, यह गाय, अनाज का बोरा और मोहरों की थैली तू ले जा। अब इस परिवार का पूरा भार मैंने भी तुझे सौंप दिया है। तू जिस तरह चाहे अपने भाई-बहिन का भविष्य बना सकता है। मैं रुकावट नही डालूंगा। पर सुन मेरी विनती है कि इस बात की चर्चा किसी और से न कर देना। नहीं तो ससार में मेरा कोई नाम लेने वाला भी नही रहेगा।' यह कह कर वे लौट गये।

भूल का निवारण

ब्रह्माजी ने धरती, आकाश, बादल और सितारों की रचना करने के बाद धरती की ओर देखा। वहाँ का विचित्र दृश्य था। कहीं भूचाल आ रहे थे। कहीं पर धरती सपाट थी तो कहीं दलदल था। पहाड़ों की घाटियों से रंग-बिरंगी धातुएँ पिघलकर बह रही थीं।

धरती ठंडी हुई तो वहाँ सृष्टि का विकास आरम्भ हो गया। मगर, मछली, केकड़े आदि जलचर समुद्र, तालाबों और नदियों में रहने लगे। चिड़ियाँ आकाश में उड़कर फिरतीं तथा झाड़ियों पर अपना घोंसला बनाती थीं। पेड़, पौधे, पहाड़ आदि सभी वनस्पति बढ़ने लगे। पशु, पक्षी और मनुष्य बढ़ते थे पर एक अवस्था के बाद मर जाते थे। नदियाँ बढ़ती थीं तो उनका पानी समुद्र में पहुँच जाता और गरमियों में भाप के रूप में आकाश से बादल बनकर बरसता था।

यह सोचकर कि संसार का सब कार्य अब सुव्यवस्थित हो गया है, ब्रह्माजी विश्राम करने के लिए हिमालय पहाड़ पर चले

गए। उधर धरती पर चट्टानें छोटे-छोटे टीले, पहाड़ियाँ और पहाड़ सभी बढ़ने लगे। कहीं-कहीं तो इतने ऊँचे उठ गये कि सूर्य की रोशनी तक को ढक लेते थे। वहाँ उनकी चोटी पर कुहरा छाया हुआ रहता और सदा बर्फ जमा करती थी। वे गाँवों के बीच इतने ऊँचे हो गये थे कि एक गाँव और दूसरे के बीच दूरी बढ़ गयी थी। जहाँ पहले खेती होती थी वहाँ पहाड़ों से पत्थर गिरते थे और खेत नष्ट हो गये थे। यह सब देखकर मनुष्य घबरा गया। उसने सोचा कि पहाड़ यदि इसी भाँति ऊँचे होते गये तो एक दिन धरती पर खेती करने के लिये भूमि बची नहीं रहेगी। इस विपत्ति से बचने के लिये एक बड़ा यज्ञ किया गया और देवताओं के राजा इन्द्र से प्रार्थना की गयी कि वे उनकी रक्षा करने का कोई उपाय सुझावें।

इन्द्र महाराज प्रति दिवस देवलोक से कुछ दूतों को धरती पर भेजकर वहाँ के लोगों से पता लगाते थे। एक दिन उनको अपने दूतों से यज्ञ की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने गम्भीरता पूर्वक सोचा कि पहाड़ों के बढ़ने से सच ही सारी धरती नष्ट हो जायेगी। धरती पर पहाड़-ही-पहाड़ रह जायेंगे। साथ ही पूरा आकाश उनसे ढक जायेगा। धरती पर सुन्दर वन, उपवन, खेत और आदमियों की बस्तियाँ सब नष्ट हो जावेंगी, फिर देवताओं की पूजा कौन करेगा। इन्द्र की समझ में बात आ गयी। उन्होंने अनुमान लगाया कि ब्रह्माजी से बड़ी भूल हो गयी है। वे उनके पास इस पर सलाह करने के लिये गये।

ब्रह्माजी सृष्टि का निर्माण करने के बाद थककर गहरी नींद में सो रहे थे। उन्होंने अपने सेवकों को आदेश दिया था कि अभी कुछ वर्षों तक उनको जगाया न जाय। इन्द्र के यह बताने

पर भी कि बड़ा आवश्यक कार्य है वे उनको जगाने के लिए सहमत नहीं हुये ।

हारकर इन्द्र शिवजी के पास पहुँचे तो देखा कि वहाँ वे और उनके गण भूत-वैताल भंग के नशे में झूम रहे हैं । कुछ मस्ती से नाच रहे थे । तांडव नृत्य की तैयारी हो रही थी । इन्द्र ने हाथ जोड़कर सब बात बतायी । शिवजी ने इन्द्र से निवेदन किया कि वे ठीक तरह बैठकर पहले भंग का स्वाद लें । उनके अस्वीकार करने पर हँसते हुए कहा—'आप तो महाराज, कोई-न-कोई झंझट लगाये ही रहते हैं । देखो मित्र, पहाड़ ऊँचे न होते तो हम कैलाश में कैसे बसते ? फिर हिमालय की पुत्री पार्वती से मेरा विवाह भी न होता । यहाँ हम निर्भय रहते हैं । कभी कोई रगड़ा-झगड़ा नहीं होता है । आपको राज-काज चलाना नहीं आता इसीलिए छोटी-छोटी बातों से घबरा उठते हैं । मेरी सलाह मानो, भंग का एक गोला मुँह में रख लो, सारी चिन्ता मिट जायगी ।'

इन्द्र चुपचाप वहाँ से खिसक गये । वे विष्णु भगवान के पास पहुँचे । विष्णु ने उनके आने का कारण पूछा । इस पर इन्द्र ने झुंझलाकर कहा—'महाराज, पृथ्वी पर पहाड़ फैल रहे हैं । कुछ दिनों के बाद पूरी धरती पहाड़ों से ढक जायगी । ब्रह्माजी गहरी निद्रा में सो रहे है और शिवजी भंग की तरंग में मस्त है ।'

विष्णु यह सुनकर पहले तो चिन्तित हुये फिर बोले—'आप निश्चिन्त होकर जाइये, मैं इसकी कोई व्यवस्था शीघ्र करूँगा ।'

इन्द्र सन्तुष्ट होकर लौट गये । उनके चले जाने पर विष्णु ने गंभीरता से सारी परिस्थिति पर विचार किया । नदियों और

भूचालों से यह कार्य नहीं रुक सका है। यदि पहाड़ बहुत ऊँचे हो जायेंगे तो ठंड से मनुष्य, पशु और वनस्पति सब नष्ट हो जायेंगे।

सोच-विचार कर विष्णु ने ब्राह्मण का रूप धरा और पृथ्वी पर आकर पहाड़ों के राजा के पास पहुँचे। उनको आशीर्वाद देकर पूछा—'पर्वतराज, बहुत दिनों में आपको देखा है। कुशल-मंगल तो हैं।'

पर्वतराज ने सरलता से उत्तर दिया—'अतिथि महाराज, हम भले हैं। शीघ्र ही सारी पृथ्वी पर हमारा राज्य हो जायगा। आप अच्छे कुल के लगते हैं। हमें एक पुरोहित की आवश्यकता है। आप इसी पर्वत की खोह में रहिये और रात को आकाश पर फैले हुये नक्षत्रों और तारों की कहानी हमें बताया कीजिए।'

ब्राह्मण ने कहा—'यजमान, आपकी बात स्वीकार है। आपकी पत्नी कहाँ है? बाल-बच्चों को भी आशीर्वाद दे आऊँ।'

'यहाँ तो फक्कड़ हैं ब्राह्मण देवता, बीबी-बच्चे कहाँ से होंगे?'

'यह आप क्या कह रहे हैं? आपकी इतनी उम्र हो गयी और अभी आपका विवाह नहीं हुआ है। आगे आपका कुल कैसे चलेगा? मैं और मेरी ब्राह्मणी ऐसे परिवार में नहीं रह सकते हैं।'

इस पर पर्वतराज चिन्तित हुए, बोले—'पुरोहितजी, आप कृपापूर्वक कोई अच्छी कन्या ढूंढ कर हमारे कुल का उद्धार कीजिए।'

ब्राह्मण ने कहा—'यजमान, तुम खूब फलो-फूलो; लड़की ढूंढने में समय लगेगा। अभी तुम इतने बढ़ गये हो कि उम्र

अधिक लग रही है। इसी प्रकार बढ़ते जाओगे तो बूढ़े हो जाओगे। जब तक मैं लौटकर न आऊँ आप इसी भाँति रहियेगा। अच्छी दुलहिन ढूँढ़ने में कुछ समय तो लग ही जायेगा। बूढ़े को कोई अपनी लड़की नहीं देगा।'

पर्वतराज ने आश्वासन दिया कि वे उसी भाँति रहेंगे, बढ़ेंगे नहीं। उनकी राह देखते रहेंगे। वे जितनी जल्दी हो, लौट आयें। उनको आशीर्वाद देकर ब्राह्मण देवता चले आये। सब पहाड़ों को भी उस विवाह के लिए निमंत्रण दे दिया और कहते गये कि पर्वतराज के विवाह तक कोई बढ़े नहीं।

तब विष्णु वहाँ से चुपचाप गरुड़ पर बैठकर हिमालय पर्वत पहुँचे। वहाँ इन्द्र को उन्होंने सब बात बता दी। सुनकर देवलोक में बड़ा सन्तोष हुआ।

पर्वतराज और उनकी प्रजा आज तक ब्राह्मण की प्रतीक्षा कर रही है। वे अपनी आने वाली दुलहिन की कल्पना में लीन हैं। इस भाँति एक भूल का निवारण करके विष्णु भगवान ने दुनिया की रक्षा की।

◆

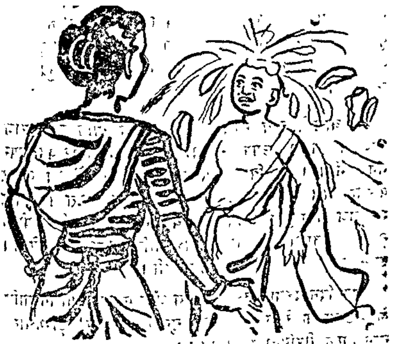

बुद्धि की परख

भारतवर्ष के सुदूर दक्षिण में अरब सागर के किनारे मालाबार का सुन्दर प्रदेश है। वहाँ चन्दन के घने वन हैं, जहाँ कि किसान काली मिर्च, लौंग, तेजपात, काजू आदि की खेती करता है। वहां नारियल और ताड़ के वनों के बीच सुन्दर-सुन्दर गाँव फैले हुये हैं। उस धरती पर सूर्योदय की छटा मनमोहक होती है। प्रातःकाल मछुये समुद्र में छोटी-छोटी डोंगियां लेकर मछली पकड़ने चले जाते हैं। दिन भर सागर से संघर्ष कर संध्या को

थके-मांदे तट पर लौटते हैं। वहां उनके परिवार वाले डूबते सूर्य को निहारते हुये मछलियों से भरी हुई डालियां उतार-उतार कर किनारे के बालू पर रखते जाते हैं। सागर वहां ज्वार आने पर सीपियां बिछा कर फिर चुपचाप चला जाता है। हमारे पूर्वजों का विश्वास था कि प्रातःकाल जो शीतल मन्द सुगन्धित वायु उत्तर भारत में बहती है, वह मालावार के समुद्र तट से आती है।

—आज से बहुत साल पहले वहां एक नीति-कुशल राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी सागर के किनारे वेदारण्यम् नगर में थी। वह विद्वानों, पण्डितों और साधुओं का आदर करता था। इसीलिये वहां दूर-दूर देशों से पण्डित आते और महाराज द्वारा पुरस्कृत होते थे। यही नहीं, वहां कई राज्यों के सर्वश्रेष्ठ कलाकार, शिल्पी, संगीतज्ञ आदि आकर बस गये थे। इससे उस राज्य की ख्याति बढ़ गई थी।

एक दिन दरबार लगा हुआ था और महाराज पाणन जाति के श्रेष्ठ गायक से एक लोकगीत सुन रहे थे। वह उण्णिचार्या नामक एक वीरांगना का गीत था।

एक दिन वह अपने गांव के मन्दिर से लगे हुये मेले में जाने की तैयारी कर रही थी :

उसने चन्दन घिसा और दर्पण देखकर माथे पर तिलक दिया। बालों को सुन्दरता से सँवारकर आँखों में अंजन लगाया। शरीर पर अंगराग लेपन कर, हरे रेशम की धोती पहन ली और आंचल का पुष्पाकार बनाया। गहनों की पेटी खोली और कानों में सोने का तोड़ा पहिना। गले में सतलड़ी सोने की माला डाली। ऊपर से एक मोती जड़ी हुई माला भी पहिन

ली। हाथों में कंकण पहिने और उंगलियों में अंगूठियां डाल लीं। अन्त में उसने अपने कमरे में एक तीक्ष्ण कटार खोंस ली।

'वह चुपचाप पति के साथ जा रही थी कि रास्ते में शत्रुओं ने उसके पति पर हमला कर दिया। पति घबरा गये, पर उस वीरांगना ने अपना सिर और कमर कस लिया। अब कमर से कटार निकाल कर फिर कमर पर भली-भांति अँगोछा बांध लिया और शत्रुओं पर टूट पड़ी। उसने जम कर युद्ध किया, जिससे शत्रु परास्त होकर भाग गये।'

वह गायक गीत सुना कर चुप हो गया। धीरे-धीरे वाद्यों की ध्वनि भी खो गई। चारों ओर निस्तब्धता छाई। उस चुप्पी को तोड़ते हुए एक दूत ने आकर महाराज से निवेदन किया कि सुदूर उत्तर नालन्दा से पांच पण्डित आये हैं और द्वार पर खड़े होकर महाराज से भेंट करने की याचना कर रहे हैं।

एकाएक एक साथ पांच विद्वानों का इस भांति साथ-साथ आ जाना सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुये। यह एक नई घटना थी। वे उठे और स्वयं ही उनकी अगवानी करने द्वार पर पहुँचे और उनको सत्कार-पूर्वक अन्दर ले आये। उनको यथोचित स्थानों पर बैठा कर निवेदन किया कि वे अपना परिचय देकर दरबार में बैठे हुए विद्वानों तथा उनको कृतार्थ करें।

एक विद्वान् उठा और उसने बताया कि पाँचों नालन्दा में पन्द्रह वर्ष रह कर अपनी शिक्षा समाप्त कर लौटे हैं। प्रत्येक ने अपने विषय का गम्भीर अध्ययन किया है। मैंने तर्क पढ़ा तथा मेरे चारों साथी व्याकरण, संगीत, ज्योतिष

आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता हैं। शिक्षा समाप्त करने के बाद हम साथियों ने निश्चय किया कि एक ही राज्य में रहकर अपनी विद्या का प्रचार करेंगे। हम कई प्रदेशों में गये पर वहाँ हमें अनुकूल वातावरण नहीं मिला। आपकी कीर्ति सुनकर इस विश्वास से आये हैं कि यहाँ हमें ठीक सा आश्रय मिल जायगा जिससे हम अपने ज्ञान का प्रसार कर लोगों का कल्याण कर सकेंगे।

महाराज ने उनकी बात सुनी और बहुत प्रभावित हुये। पहला तर्कशास्त्र का आचार्य था तो दूसरा प्रसिद्ध व्याकरण का। तीसरे ने संगीत की नई पद्धति पर एक ग्रन्थ की रचना की थी। चौथा पण्डित सूर्य और नक्षत्र मण्डल की आकर्षण शक्ति पर नई खोज करने में सफल रहा था, जबकि पाँचवाँ पण्डित कई रस और भस्मों का आविष्कारक था।

पण्डितों ने अपने गुरुओं द्वारा प्राप्त परिचय-पत्र तथा गुरुकुल के प्रमाण पत्र महाराज को दिये। उनके गुरुजनों ने अपने शिष्यों के सम्बन्ध में लिखा था कि वे अमूल्य रत्न हैं और उनसे आशा की जाती है कि अपने ज्ञान की नई व्याख्यायें कर नई पद्धतियाँ चलाने में सफल होंगे। यह सब देखकर महाराज मन ही मन प्रसन्न हुये और संकल्प किया कि उनके सम्मान में एक विशेष दरबार की घोषणा शरद पूर्णिमा के अवसर पर की जायगी। उसमें वे एक नये गुरुकुल की स्थापना की बात रखेंगे और वहाँ का कार्यभार इन पाँचों आचार्यों को सौंप देंगे।

इस मसले पर उन्होंने अपने मन्त्री से सलाह ली तो वे बोले, "महाराज, हमारे यहाँ की गुरुकुल शिक्षा-पद्धति समय के साथ नहीं चल पा रही है। वह शिक्षा एक सीमित दायरा गुरु

और शिष्य के बीच बनाती है। वहाँ पाठ्यग्रन्थों के ज्ञान के अतिरिक्त छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप पण्डितों से कहें कि कल प्रातः काल वे लोग स्वयं रसोई बना, भोजन से निवृत होकर, दोपहर को दो बजे दरबार में पधारें।"

महाराज यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गये। मन्त्री बहुत बूढ़े थे और उनके पिता के समय से थे। वे नीतिकुशल, चतुर और युद्ध विद्या में निपुण थे। उन्होंने राज्य की ऐसी व्यवस्था की थी कि देश खुशहाल था और इससे प्रजा भी सन्तुष्ट थी। वे स्वयं विद्वानों का आदर करते और समय-समय पर विभिन्न देशों के आचार्यों को निमन्त्रण देकर बुलाते थे। उनकी धारणा थी कि राजा को सदा विद्वानों के बीच रहकर उनसे ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये, लेकिन आज की घटना से उनको बहुत दुःख हुआ।

मन्त्री ने विद्वानों को राजा का आदेश सुनाकर खजाँची से कहा कि पण्डितों को एक सौ सुवर्ण मुद्रा दे दी जांय। उनके रहने की व्यवस्था अतिथिशाला में करवा दी। फिर हाथ जोड़कर बोले, "आचार्यगण, कल दरबार में आपका स्वागत होगा। आप लोग स्वयं अपना भोजन बनाकर ठीक समय पर पधारें। महाराज तब तक आपके लिये कोई उचित व्यवस्था सोच लेंगे।

दरबार के समाप्त होने पर वे पाँचों पण्डित निवास स्थान पर गये। लेकिन महाराज बहुत चिन्तित और दुःखी थे। वे अपने आसन से नहीं उठे। मन्त्री की बात उनकी समझ में नहीं आई। उनकी धारणा थी कि यह इन विद्वानों का अनादर किया गया। मन्त्री राजा के मन की बात समझकर बोले "महाराज बहुत परेशान लग रहे हैं।"

महाराज ने खिन्नता प्रकट करते हुये कहा, "मन्त्री जी, आप नीतिकुशल हैं फिर ऐसा लगता है कि अब बुढ़ापे के कारण कभी-कभी आपका मस्तिष्क समय के साथ नहीं सोच पाता है। आज आपने उन विद्वानों को भोजन बनाने का काम सौंपा है, जब कि यह भार एक रसोइया को आसानी के साथ दिया जा सकता था। मुझे इसमें आपकी कोई बुद्धिमानी नहीं दिखलाई पड़ती हैं।"

मन्त्री ने नम्रता के साथ कहा, "श्रीमान, मैंने बहुत सोच-विचार कर यह बात कही है। मैं आपका कृपापात्र हूँ, इसीलिये सदा आपके हित की बात सोचता हूँ। कल आपको स्वयं ही पूरी बातों का ज्ञान हो जायगा और फिर आप मेरी सराहना करेंगे।"

"कहीं वे इसे अपना अनादर समझकर हमारा देश न छोड़ दें।"

"आप उसकी चिन्ता न करें। कोई अनुचित घटना होगी तो महाराज आप मुझे दण्ड दीजियेगा।"

महाराज सन्तोष के साथ अपने महल में चले गये। वे पाँचों पण्डित अतिथिशाला में पहुँचे और इस समस्या पर विचार करने लगे कि प्रातःकाल रसोई कैसे बनाई जायगी? यह काम गुरुकुल में तो बहुत आसान था। कुछ विद्यार्थी जंगल से सूखी लकड़ी बीन कर ले आते थे। नमक, घी, दाल, आटा-चावल आदि का सामान विभिन्न राज्यों द्वारा प्राप्त होने पर भण्डार में जमा किया जाता था। प्रति दिवस भण्डार से रसद निकाली जाती थी; किन्तु कल तो बाजार में जाकर सब वस्तुएँ क्रय करनी होंगी। यह सोचकर एक ने सामान की पूरी सूची बनाई और फिर सबने उसमें आवश्यक संशोधन किये। मध्य रात्रि

तक विचार-विमर्श तथा तर्क-वितर्क करने के बाद सब ने काम का बँटवारा कर लिया और फिर सो गये।

वे प्रातःकाल उठे और दैनिक कार्यों से निवट कर भोजन बनाने के प्रारम्भिक कार्यों में जुट गये। तर्क-शास्त्री घी लाने के लिए बाजार गये। उन्होंने घी लिया और घर लौट रहे थे कि मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि पहले मानव ने हंडिया बनाई या घी बनाने का ज्ञान प्राप्त किया है। यह सवाल सुलझ भी नहीं पाया था कि आधार का प्रश्न उठ पड़ा—'पात्रद् घृतं या घृताद् पात्रं ?' घी का आधार बर्तन है या बर्तन का आधार घी ? इस समस्या के पक्ष-विपक्ष में कई तर्क उठे। रात भर उनीदे रहने के कारण मस्तिष्क थक गया था। वह अपने में ही उलझता हुआ निवास स्थान पर पहुँचा और सीढ़ियाँ चढ़ता-चढ़ता रुक गया। अपने तर्क को समाधान करने के लिये घी का आधार बर्तन है या बर्तन का आधार घी, उसने बर्तन उल्टा कर दिया, जिससे सब घी जमीन पर बिखर कर गिर पड़ा। वह तो खिल-खिलाकर हँसता हुआ चिल्लाया "समझ में आ गया ! समझ में आ गया ! ! सभी आधार केन्द्रीयभूत होते हैं।"

व्याकरण के विद्वान् महोदय दही लेने के लिये हाट गये। उनको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ बहुत-सी वस्तुएँ बिक रही थीं, पर दही कहीं भी नहीं मिला। तरकारी, फल और राशन वालों के यहाँ गये पर वहाँ नहीं मिला। लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि दही वाली आगे की गली में चली गई है। वे तत्काल ही उस ओर दौड़ पड़े। तभी उनके कानों में दही वाली का पुकारना गूँजा—"थईर-ओ ! थईर-ओ ?"[1]

---

[1] मलयायम मे 'थईर' दही के लिये कहते है।

वे स्तब्ध खड़े रह गये । सोचा यह कैसी मूर्ख है । 'थईर-ओ' कहना व्याकरण की कसौटी पर अशुद्ध होता है । लेकिन युवती तो 'थईर-ओ ।' पुकार रही थी ! वह स्वर गली के भीतर गूंज रहा था । बार-बार अशुद्ध भाषा सुनकर क्रोध आ गया कि कहा मूर्खों के देश में आ गये हैं । बस उन्होंने दही वाली को पुकारकर रोक लिया और उसे अशुद्ध उच्चारण करने के लिये डांटा-फटकारा । इससे दही वाली बहुत घबराई और यह सोचकर कि कोई लम्पट उसका पीछा कर रहा है, दही की मटकी उठा कर उनके सिर पर दे मारी । यह सब करके वह भाग गई । इधर मटकी के टुकड़े-टुकड़े हो गये और पण्डित जी के सिर पर गहरी चोट आई, जिससे खून बहने लगा । अंगोछे से सिर बांधकर वे लहू से लथपथ घर पहुँचे ।

संगीत के मर्मज्ञ ने डेगची पर चावल धरा और उँगलियों से नाप कर पानी भर दिया । अब उस डेगची को चूल्हे पर चढ़ाया । कुछ देर के बाद भाप उठने लगी जिससे ढक्कन बार-बार ऊपर नीचे हो जाता था । अब उसमें रऽट···रऽट की ध्वनि प्रतिध्वनित हुई । यह सुनकर श्रीमान् जमे और पल्थी मार कर बैठ गये, फिर इस स्वर को ताल में साध लिया । उसी के साथ कुछ गुनगुनाने भी लगे । किन्तु कुछ देर के बाद पानी सूख गया और अब रऽट···रऽट के स्थान 'खऽद···खऽद की ध्वनि आने लगी, जिससे कि स्वर बेसुरा हो जाने के कारण ताल बिगड़ गया । वे इस उपेक्षा को सहन न कर सके और झुंझलाहट में उठकर डेगची पर जोर से लात मारी, जिससे डेगची भूमि पर गिर पड़ी और सब चावल बिखर गये । कुछ उनके पाँवों पर गिरे और पांव पर फफोले उठ आये । उनकी समझ में यह घटना नहीं आई । लेकिन मन में इस बात का सन्तोष हुआ कि उन्होंने

अपनी विद्या की प्रतिष्ठा नष्ट नहीं होने दी है। उनको इस बात की चिन्ता कहाँ थी कि वे चावल बनाने में असफल रहे हैं।

ज्योतिषीजी ने अपना पंचांग देखा और शुभ मुहूर्त पर पत्ते लेने के लिए निकल पड़े। कुछ दूर चलने के बाद उनको एक बड़ा बाग दिखलाई पड़ा जहाँ पेड़ों का एक बहुत बड़ा झुरमुट था। माली से पूछ कर वे वहाँ पहुँच कर पत्ते तोड़ने लगे। अचानक उनकी दृष्टि पेड़ पर चढ़ी हुई छिपकली पर पड़ी। वह औंधी दृष्टि से उनको घूर रही थी और कुछ देर तक इसी भाँति ताकती हुई 'चुक-चुक-चुक' करती हुई ऊपर की ओर चढ़ गई। ज्योतिष विद्या में शकुन-अपशकुन की कसौटी पर छिपकली को देखना और उसका स्वर सुनना दोनों ही बहुत अशुभ लक्षण माने जाते हैं। यह सोच-विचार कर कि यह महा अपशकुन हो गया है; अतएव अब पत्ते नहीं तोड़े जा सकते हैं, वे खाली हाथ लौट आये। साथियों को पूरी बात बताकर कहा कि महा-अरिष्ट कट गया है। इससे सबको सन्तोष हुआ।

वैद्य महाराज को शाक-भाजी लाने का काम सौंपा गया। वे हाट गये। वहाँ बहुत-सी तरकारियाँ डलियों पर सजा कर रखी हुई थीं। उन्होंने कुछ की परख मौसम तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से की। कुछ तरकारियाँ ऐसी थीं जिनसे 'वायु' हो जाने की संभावना थी, जबकि कुछ 'पित्त' पैदा करने वाली लगीं। जो बचीं उनमें 'कफ' पैदा करने की प्रवृत्ति थी। कुछ तरकारियाँ कृत्रिम साधनों से मौसम से पहले उगाई गई थीं, अतएव उनके स्वाभाविक गुण नष्ट हो गये थे। उन्होंने विवेकपूर्वक सोच कर निर्णय लिया कि तरकारी खरीद कर वे अपना
साथियों का स्वास्थ्य बिगाड़ना नहीं चाहते हैं।
हाथ ही लौट कर आ गये। सबको बता दिया

उनके ज्ञान के कारण वे सब योगी होने से बच गये हैं। इस पर सब ने बहुत हर्ष प्रकट किया।

वे लोग अभी तक आपस में बातें कर रहे थे कि राजदरबार में नगाड़ा बजने लगा और बीच-बीच में तुरही का स्वर भी गूँज उठा। वे समझ गये कि दरबार लगने का समय हो गया है। बस वहाँ जाने की तैयारी में जुट गये और समय पर पहुँच गये।

मन्त्री ने उनका स्वागत कर उनको विशिष्ट स्थानों पर बैठाया। प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ समाप्त होने पर कहा, "विद्वज्जनों, हम लोग आपका भोजन बनाने का अनुभव सुनने के लिये उत्सुक हैं। कृपया हमारी जिज्ञासा का समाधान कराकर आभारी करें।"

पाँचों पण्डितों ने बारी-बारी से अपनी दारुण कथा सुनाई। इस पर मन्त्री मुस्कराकर बोले, "विद्वानों, गुरुकुलों में सीखी हुई विद्या की परिधि कितनी सीमित है, इसका ज्ञान आपको हो गया। अपने-अपने विषय के आचार्य होने पर भी आपको जीवन व्यवहार की जानकारी नहीं है। आप लोग व्यर्थ इस दम्भ में फूले हुये हैं कि आप महाज्ञानी हैं, जबकि दैनिक जीवन की साधारण-सी कसौटी पर आप असफल रहे हैं।

महाराज उन लोगों की बातें सुनकर दंग रह गये। मन्त्री की बुद्धि की मन-ही-मन सराहना की। आज वहाँ पर ऐसी नई परिस्थिति आ पड़ी थी कि वे ज्ञान की परिभाषा बूझने में स्वयं डूब गये। दरबार में उपस्थित सभी लोग उलझन में पड़ गये थे। यह समझ में नहीं आ रहा था कि वास्तव में ज्ञानी किसे कहा जाय?

मन्त्री ने उस सन्नाटे को तोड़ते हुए कहा, "गुरुजनों, यह आज कोई नया प्रश्न नहीं उठा है। गुरुकुल-प्रणाली एक युग के लिये उपयोगी थी। हमें उससे आज भी लाभ उठाना चाहिये। लेकिन हमारा कर्त्तव्य है कि हम उस ज्ञान को सुलभ बनाकर उसका आम जनता में प्रचार करें। इस दृष्टि को आगे रखकर महाराज ने निश्चय किया है कि इस नगर में शिक्षा का एक बड़ा केन्द्र खोला जाय, जहां केवल शास्त्रार्थ ही नहीं होगा, वहां पर जीवन और ज्ञान से सम्बन्धित व्यावहारिक बातों की शिक्षा भी दी जायगी।"

शरदोत्सव पर महाराज ने उस शिक्षा-केन्द्र की नींव डाल कर उसका संचालन मन्त्री महोदय को दे दिया और वे पांचों पण्डित वहां शिक्षा देने लगे।

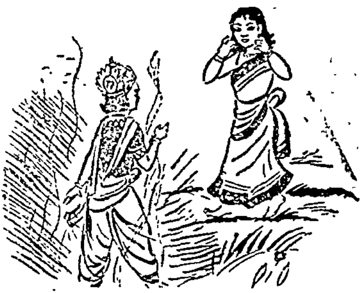

नेकी का फल

सोने का वंगाल; उस प्रदेश की धरती में गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा पद्मा का जल प्राण संचारित करता है। वहां बसंत में अमराइयों की मधुर बयार बहती है और शरद के शस्य-श्यामल खेत अपूर्व मुस्कराहट बिखेरते हैं। नदियों में आर-पार जाती हुई नौकाओं की निराली शोभा मिलती है। प्रात:काल हलवाहे और चरवाहे धान के खेतों और बांस के झुरमुटों के वीच वसे हुये सुन्दर गांव से बाहर निकलकर मस्ती की तान छेड़ते हुये खेतों, खलियानों और जगलों की ओर जाते है। रात्रि के शान्त वातावरण में

वायु के हल्के झोंकों से काँपते हुये नारियल के पत्तों की स्वर-लहरी सब का मन मोह लेती है।

उस प्रदेश में आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नाम का एक विशाल नगर था। वहीं एक जुलाहा रहा करता था। वह श्रेष्ठ बुनकर था। उसकी दो पत्नियाँ थीं और उनकी एक-एक बेटी थी। बड़ी पत्नी कामचोर, जिद्दी तथा गुस्सैल थी। अपनी बेटी को कोई काम नहीं करने देती थी। उसने उसका नाम सुखिया रख दिया था।

छोटी पत्नी सुशील तथा बुद्धिमान थी। वह सब काम बड़े परिश्रम से करती। उसने अपनी बेटी को भी कामकाज में निपुण बना दिया था। बेटी गरीबों की मदद करती थी, इसीलिए सब उसे दुखिया कहा करते थे।

बड़ी पत्नी बहुत चापलूस थी। जुलाहा उसे बहुत अच्छा मानता था। वह जो कुछ कमाता सब कुछ उसे सौंप दिया करता था। वह सब काम अपनी सौत को समझा कर अपनी बेटी के साथ मुहल्ले में गपशप करने चली जाती थी। छोटी बहू दिन भर चूल्हा-चक्की में फँसी हुई रहती। दुखिया झाड़ू-बुहारी लगाती और चौका-बरतन साफ करती थी।

एक दिन मेले से लौटने के बाद जुलाहा बीमार पड़ गया। उसे पाँतो वाला ज्वर हो आया था। कुछ महीनों बाद वह मर गया। दुखिया और उसकी माँ इस घटना से बहुत दुःखी हुईं और कई दिनों तक शोक में पड़ी रहीं। बड़ी बहू ने देखा कि उनको घर-गृहस्थी की चिन्ता नहीं है। बस उसने चुपके-चुपके वहाँ का सब सामान अपनी एक सहेली के यहाँ भेज दिया। जब छोटी बहू को होश आया तो उसने अपना हिस्सा माँगा। बड़ी

वह उससे लड़ने लगी। रोज की लड़ाई-झगड़े से ऊब कर एक दिन दुखिया और उसकी माँ ने वह घर छोड़ दिया।

सुखिया अच्छा खाना खाती और सुन्दर कपड़े पहनती थी। उनको किसी बात की कमी नहीं थी। वे आराम से रह कर आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करती थीं। गाँव के सभी लोगों के साथ उनका मेलजोल था। जब कि दुखिया अपनी माँ के साथ चर्खा कातती, रुई के गोले बनाती और घर का सब काम काज करती थी।

मेले का दिन था। छोटी बेटी ने कई वस्तुयें वहाँ ले जाने के लिये बनाई थीं। उसने उनको कमरे से बाहर निकाला तो पाया कि सूत के गोलों को चूहों ने कुतर डाला है। चूहों ने तो उछल-कूद कर धुनी हुई रुई भी बिगाड़ डाली थी। वह बहुत घबराई तो माँ ने समझाया कि उसे सुबह की धूप में सुखाने के लिये डाल दे। बेटी ने उनको बाहर धूप में फैला दिया। माँ घर-गृहस्थी के काम में जुट गई। तभी एकाएक आँधी आई और रुई उड़ने लगी। बेटी ने उसे बचाने की चेष्टा की लेकिन वह तो आकाश में उड़ रही थी। वह उसके पीछे दौड़ने लगी। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि एक गाय सड़क के किनारे लेटी हुई है। उसकी बाछी उछल-कूद मचा रही थी। उसने अनुमान लगाया कि गाय बीमार है। वह उसके पास पहुँची और वहाँ की सफाई की। फिर कुछ हरी पत्तियाँ तोड़ कर लाई और उसके आगे खाने के लिये डाल दीं।

लेकिन रुई की पूनियाँ तो दूर-दूर आकाश में उड़ रही थीं। वह उनके पीछे दौड़ी तो देखा कि आगे एक सुन्दर केलों का झुंड खड़ा है। उसके चारों ओर झाड़-झंखार घिरे हुए हैं, जिससे कि वह स्थान बहुत गन्दा लग रहा था। उसने चुपचाप चारों

ओर का झाड़-झंखार साफ किया और पास की नहर से एक छोटी कूल निकाल कर उधर कर दी।

—आज मेला था। इसकी उसे बड़ी चिन्ता थी। वह मन-ही-मन न जाने क्या-क्या सोच रही थी कि देखा एक घोड़ा लंगड़ाता हुआ चला जा रहा है। उसने पुचकारा तो हिनहिनाता हुआ उसके पास आ गया। उसने उसके पाँव से काँटा निकाल कर उसकी मालिश की, फिर नहर की ओर ले जाकर उसे नहलाया-धुलाया। अब इधर-उधर से घास जमा करके उसके आगे डाल दी।

धूप चढ़ आई थी। वह दौड़ने लगी। तभी उसने देखा कि हवा उन पूनियों और रुई को उड़ा कर बहुत बड़े मकान के ऊपर वाली छत पर जमा कर रही है। चारों ओर सुनसान था। वहाँ का फाटक खुला हुआ था। वह चुपचाप भीतर पहुँच गई। अब सावधानी से सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। बड़ी देर तक चढ़ने के बाद ऊपर की छत पर पहुँची। वहाँ आँधी नहीं चल रही थी।

अब उसकी दृष्टि सामने वाले कमरे पर पड़ी। वहाँ एक बूढ़ी सूत कात रही थी। उसके बाल सन की भाँति सफेद थे। चारों ओर सूत और बुने हुए कपड़ों का ढेर था। उसे माँ की बचपन में सुनाई हुई कहानी याद आ गई। सच ही वह चाँद की बूढ़ी माँ के पास पहुँच गई थी। वह सावधानी से आगे बढ़ी और माँ के चरणों पर सिर रख दिया। नम्रता से बोली, "बूढ़ी माँ, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?"

उसने उसे देखा, चर्खा कातना बन्द करके पूछा, "कहाँ से आ रही हो बेटी?"

"माँ, मैं एक जुलाहे की लड़की हूँ। मेरा पिता मर गया है। हम बहुत गरीब है। आज मेला है, मैंने रुई सुखाने के लिये डाली तो उसे हवा उड़ा कर आपकी छत पर ले आई है। आप आज्ञा दें तो मैं उसे चुन लूं। आप बुरा न मानियेगा।"

बूढ़ी ने उस भयभीत बच्ची को देखा। वह जानती थी कि वे बहुत गरीब हैं। सब की सेवा में लगी रहती है। उसने लड़की की टोढ़ी उठा कर उसे चूमते हुये कहा, "छठी माई, इस बच्ची की सब अलाय-बलाय दूर कर दो। इसके सब कष्ट हर लो। यह बहुत प्यारी बिटिया है। जा बेटी, घाट पर से नहा धो कर आ जा। सब सामान उस कमरे में रखा है। नहा धोकर खा पी ले। संध्या को जितनी रुई चाहिए लेती जाना।"

वह लड़की कमरे में गई। वहाँ रंग-बिरंगी साड़ियाँ और सुन्दर कपड़े सजा कर रखे हुए थे। उसने एक साधारण साड़ी और जम्पर उठाया। तेल-फुलेल और साज-शृङ्गार का सामान लेकर तालाब के किनारे गई। तालाब में उतरने पर उसने सूर्य भगवान को नमस्कार किया। अब एक डुबकी लगाई तो पानी में अपनी छाया देखकर पाया कि उसका रूप निखर आया है। उसने तो अचरज में देखा कि उसके पूरे शरीर पर सोने के हीरे-मोती जड़े गहने न जाने कहाँ से आ गये थे। उसने सोचा कि यह सब उसे भगवान ने दिया है। उसने चुपचाप कपड़े बदले, जूड़ा ठीक किया और लौट आई।

वह खाने वाले कमरे में गई तो देखा कि वहाँ सुन्दर-सुन्दर पकवान रखे हुए हैं। खाना खाकर उसने वह स्थान साफ किया, और बाहर निकल कर बूढ़ी माँ को गहने सौंपते हुए कहा,

"माँ, आपके तालाब में मिले हैं। इनको संभाल कर रख लीजिये।"

यह देखकर बुढ़िया मुस्कराती हुई बोली, "मेरी लाड़ली, वे सब तो तेरे ही हैं। अब जा, सामने वाले कमरे से जितनी रुई तुझे चाहिये ले जा।"

कमरे में पिटारियाँ रुई में भरी हुई थी। उसने अब एक छोटी सी पिटारी उठाई और बूढ़ी माँ के चरणों में माथा टेक दिया। वह उसका सिर सहलाती हुई बोली, "जल्दी जा बेटी, तेरी माँ तुझे ढूंढ़ रही होगी।" बड़े लाड़-प्यार से चूम कर विदा किया।

अब दुखिया सावधानी के साथ सीढ़ियों से नीचे उतरी और जल्दी-जल्दी घर की ओर वाली बटिया पर बढ़ गई। तभी 'पंछीराज' घोड़ा हिनहिनाया। वह उसके पास गई और उसे पुचकार कर प्यार किया। उसने अपना बछड़ा उसके साथ जाने के लिये दिया। पेड़ के नीचे वाली जमीन खोद कर छोटी काठी-लगाम निकाली। दुखिया ने जीन कसी, काठी चढाई और लगाम मुँह में डाल ली। वह उस पर चढ़ गई। घोड़े को प्रणाम किया।

केले के पास पहुँची तो उसने उसे एक बड़ा घौदा दिया जिसमें सैकड़ों केले लगे थे। उसने उसे आगे रख लिया। अब संध्या हो गई थी। वह बहुत प्रसन्न थी। घोड़ा दौड़ रहा था और वह गीत गुनगुना रही थी। तभी पीछे से गाय के रँभाने का स्वर कानों में पड़ा। उसने घोड़ा रोक लिया और लौट कर गाय के पास पहुँच गई। उससे अपने व्यवहार के लिये क्षमा

मांगी । गाय ने कपिला[1] वाछी देकर कहा, "ऐ नेक लड़की, इसे अपने साथ ले जा ।"

बस वह बढ़ी । पीछे वाछी कुंदालें मारती हुई आ रही थी । उसका रूप निखर आया था । शरीर पर सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण थे । जब वह घर पहुँची तो उसकी मां समझ बैठी थी कि वह खो गई है । उसे देखा तो अचरज में पड़ गई । गाय एक ओर बांधी और केले सँभाल कर भीतर रख दिए ।

उस भली मां ने सोचा कि वह आधा सामान अपनी सौत को दे देगी । घमंडी होने पर भी वह उसकी सगी है । उसने आधे गहने बांट कर एक कपड़े के टुकड़े पर बांधे और दुखिया को देकर कहा कि अपनी बड़ी मां को दे आवे । दुखिया उनको लेकर बड़ी मां के पास पहुँची और उसे प्रणाम कर पूरी कहानी सुनाई । उसे गहने की पोटली सौंप कर कहा कि मां ने भेजी है । यह सब देख कर उसकी सौतेली मां बहुत खिसियाई और उन दोनों मां-बेटी को बुरा-भला कहने लगी । चिल्ला कर बोली, "हे भगवान, अभी उनको मरे हुये पूरे छ महीने भी नहीं हुये हैं और मेरी सौत डाकुओं से मिल कर चोरी का माल बटोर रही है ।"

यह सुन कर अड़ोस-पड़ोस की औरतें जमा हो गईं तो वह बनावटीपन में बोली, "जा बेटी, यह चोरी का माल अपनी मां को लौटा देना । यह उसी को सुहाएगा ।"

दुखिया घर लौटी और मां को बताया कि उसका किस भांति अपमान किया गया है । उसने खाना खाया और थकी

---

[1] कपिला : भूरे रंग की मटमैली सफेद सीधी-सादी भोली-भाली गाय ।

मांदी चुपचाप सो गई। लेकिन रात को वहां एक विचित्र घटना घटी रुई की पूनियों वाली पिटारी पर से एक सुन्दर राजकुमार निकला। उसके माथे पर जवाहिरातों से सजा हुआ मुकुट था और हाथ में तलवार। उसने दुखिया की मां से कहा, "चांद की बूढ़ी मां ने कहा है कि आपका कोई बेटा नहीं है। इसीलिये मुझे आपकी बेटी के साथ शादी करने के लिये भेजा है।"

यह सुनकर मां की आंखों से खुशी के आंसू बहने लगे। उसने बेटी का हाथ दामाद को सौंप दिया।

—बड़ी बहू ने बाहरी मन से छोटी बेटी को डांटा-फटकारा था। वह तो उसका रूप रंग देख कर दंग रह गई थी। सब चले गये तो उसने बेटी को पुकारा, "ओ जलमुही, कल सुबह उठ कर चांद की बूढ़ी मां के पास जाकर उसके बाल उखाड़ कर पूछना कि उसे क्या पड़ी थी कि उस गरीब छोकरी को इतना सब कुछ देने की।"

उसे रात भर नींद नहीं आई। अगले दिन पौं फटने से पहले उठी। रुई की गठरी खोल कर बाहर फैला दी। बेटी को समझाया कि जब रुई उड़ने लगे तो वह उसके पीछे-पीछे भाग कर जावे। इस भांति जब चांद की मां के महल में पहुँचे तो उसे डांट-फटकार कर गहने मांग कर ले आवे। यह समझा कर वह स्वयं घाट पर नहाने के लिये चली गई।

प्रात:काल की मन्द-मन्द बयार बह रही थी। धीरे-धीरे रुई उड़ने लगी। सुखिया उसके पीछे दौड़ने लगी। उसे रास्ते में एक मरियल गाय दिख पड़ी जो उसे देखकर रंभाई। उसने उसकी ओर घृणा से मुँह बिचका कर कहा, "छी, कितनी गन्दी है। बाघ खा जाता तो अच्छा होता।"

केले के झुंड के नीचे साफ-सुथरी जगह पाकर उसने वहाँ पर रोटी खाई और जो बचा उसे इधर-उधर बिखेर दिया। घोड़ा उसे देखकर हिनहिनाया तो उसने एक पत्थर उठा कर मारा। वह तो जल्दी से उस बुढ़िया के पास जाकर उसे सबक पढ़ाना चाहती थी।

अब वह उस बड़े महल के पास पहुँची। सीढ़ियाँ चढ़ रही थी तो पाया कि वहाँ घने बादल छाये हुये हैं। वह उनको पार करते पहले तो घबराई, पर फिर चर्खे की घरर-घरर सुनकर लगा कि वह ठीक जगह पहुँच गई है। वह तेजी से छत पर आ गई और पाया कि चाँद की बूढी माँ चुपचाप चर्खे पर सूत कात रही है। वह रुई को रौंदती हुई उसके पास पहुँच कर बोली, "ये चुड़ैल, तूने उस अभागी लड़की दुखिया को उतने सारे गहने क्यों दिये हैं? मैं उसकी बहिन सुखिया हूँ। माँ ने कहा है कि चौगुने गहने लेकर लौटना। नहीं देगी तो तेरा कचूमर निकाल दूँगी।"

वह उसके बाल पकड़ने के लिये झपटी थी कि बूढ़ी माँ नम्रता से बोली, "बेटी तू बड़ी दूर से आ रही है, बहुत थक गई होगी। घाट पर जाकर नहा ले। जो कपड़े चाहिये सामने वाले कमरे से ले ले। खा पीकर सुस्ता लेना, फिर जो कुछ तुझे चाहिये माँग लेना।"

सुखिया उठी और कमरे के भीतर पहुँच, कपड़े इधर-उधर फेंक कर उसने सबसे अच्छा ब्लाउज़ और साड़ी निकाल ली। साज-शृङ्गार का सामान कुछ लिया और बाकी बिखेर दिया। अब वह पोखरे में नहाने चली गई। उस घमंडी लड़की ने ढेर सारा उबटन मला, पाँच-सात बार चंदन घिस कर लगाया। फिर वह नहाने के लिये पानी में उतर पड़ी।

उसने पानी में डुबकी लगाई तो पाया कि उसका रूप बहुत निखर आया है। शरीर पर सुन्दर गहने लटक रहे थे। लेकिन यह सब तो उसकी बहिन के पास भी था। वह ईर्षा से जल उठी और एक साथ कई गोते लगाए। घाट पर लौट कर पानी में झांक कर देखा तो दंग रह गई। उसके चेहरे पर बड़े-बड़े दाग उभर आये थे। नाक चपटी पड़ गई थी और सिर गंजा हो आया था। उसने गुस्से में भर कर सोचा कि यह सब उस बेईमान बुढ़िया की करतूत है।

ऊपर पहुँच कर वह उसे गाली देने लगी। गुस्से में कई बार उसके बाल नोचने की चेष्टा भी की। पर बूढ़ी मां ने स्नेहपूर्वक कहा, "बेटी तूने इतना लोभ क्यों किया था? तुझे भूख लग रही होगी। जा पहले रसोई घर में जा कर खाना खा ले, और बातों पर फिर सोच लेंगे।"

सच ही सुखिया को बड़ी भूख लग रही थी। वह झपट कर रसोई घर में पहुँच गई। कुछ पकवान खाए तो बाकी बिखेर दिए। ठूस-ठूस कर खा-पी कर उठी। बाहर निकल कर बोली, "चांडालिन, बता रुई का भंडार कहाँ है? मुझे देर हो रही है।"

चाँद की बूढ़ी माँ ने कमरे की ओर उँगली की। वह तेजी से वहाँ पहुँची। रुई रौंदती हुई कई पिटारी इधर-उधर फेंक दी। फिर कोने में रखी हुई सबसे बड़ी पिटारी उठाई। बाहर निकल कर बुढ़िया को जोर से एक लात मारी। जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से उतर कर महल से बाहर निकल आई।

अब वह रास्ते में तेजी से बढ़ने लगी। घोड़े के पास से निकली थी कि उसने उसके एक दुलत्ती झाड़ दी, जिससे वह भूमि पर गिर पड़ी। कुछ देर बाद कराहते हुए उठी और

लँगड़ाती हुई आगे बढ़ गई। केले के पास गई तो उसने एक कच्चा घोंदा उसके सिर पर गिराया जिससे उसे बड़ी चोट आ गई। वह किसी तरह लँगड़ाती हुई गाय के पास से निकल रही थी, तो वह उसे सींग दिखा बड़ी दूर तक खदेड़ कर ले गई। वह किसी भाँति लड़खड़ाती हुई घर पहुँची तो माँ उस कुरूप बेटी को देख कर घबरा गई।

लेकिन माँ का घमंड अभी चूर-चूर नहीं हुआ था। वह उठी और मोहल्ले वालों को बता आई कि उसकी बेटी चाँद की बूढ़ी माँ के पास से लौट आई है। रात को उसका विवाह राजकुमार के साथ होगा।

रात को उसने अपनी बेटी को सजाया-धजाया और कमरे में भेज कर बाहर से कुंडी लगा दी। आधी रात को पिटारे पर से दूल्हा निकला तो बेटी चिल्लाई :

'अंग-अंग कनकती, माथे में झिनझिनी,
अब तो न सहा जाय री, हाय री ! हाय री !!

उसकी माँ समझी कि राजकुमार उसे सुन्दर-सुन्दर गहने पहना रहा है। बाहर से पुचकारते हुए कहा, "बेटी, दूल्हा का कहना मान ले।" यह कह कर वह चैन से सो गई।

बड़ी सुबह मोहल्ले की औरतें दूल्हा देखने के लिये आईं। दरवाजा खोला गया तो वहाँ कमरे में हड्डियाँ ही हड्डियाँ मिलीं। एक कोने में विशाल अजगर की केंचुली भी पड़ी हुई थी।

●

मानवीय गुण

किसी समय विक्रमादित्य राजा राज्य करते थे। वे विचारशील, बुद्धिमान तथा वीर थे। उनका यश संसार के सभी देशों में फैला हुआ था। जब देवताओं के राजा इन्द्र ने उनकी न्यायप्रियता की बातें सुनी तो डरे कि कही ऐसा न हो अपनी सत्यवादिता के कारण वे उनका पद छीन लें। इसलिए वे बहुत चिन्तित रहने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि एक सभा कर इस समस्या का हल ढूंढ़ा जाये। सभा में ऋदिगण सम्मिलित हुए और कई दिनों तक विचार-विनिमय करने के बाद यह निश्चय किया गया कि विक्रमादित्य की परीक्षा ली जाये। वे परीक्षा में सफल हो जायें तो उनके राज्य की मंगलकाना की जाये। अन्यथा वहाँ अकाल, महामारी आदि फैला, राज्य में अव्यवस्था लाकर राज्य छोड़ने पर विवश कर, किसी अपने मन के व्यक्ति को राजा निर्वाचित कराया जाये।

एक दिन महाराज दरबार में विद्वानों के साथ बैठकर राज्य का कार्य निपटा रहे थे। देवदूत दरबार में पहुँचा और उसने

राजा के आगे तीन खोपड़ी रखकर कहा, "महाराज, सुना है कि आपके दरबार में बड़े-बड़े पंडित है। आप अपने न्याय के कारण राज्य में श्रेष्ठ माने जाते हैं। ये नरमुंड देवराज इन्द्र ने भेजकर सन्देश दिया है कि आप तीन दिन में इनका मूल्य बता कर अपनी बुद्धि का परिचय दें।"

सब दरबारियों ने आश्चर्य से देखा कि तीनों खोपड़ी रंग और स्वरूप में एक ही व्यक्ति की-सी लगती थी। वे मौन एक दूसरे का मुंह ताकते रह गए। अब देवदूत ने सन्नाटा तोड़ते हुए कहा, "सभासदों, चुप रहने से काम नहीं चलेगा। आप लोगों ने ठीक समय पर सही भेद बता दिया तो राज्य और राजा का कल्याण होगा, नही तो आप सब लोगों को बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेगी।"

देवदूत के चले जाने के बाद राज-दरबार में सन्नाटा छा गया। सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। महाराज ने राज-पुरोहित से कहा, "यह राज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। आपको राज्य के कार्यभार से तीन दिन का अवकाश दिया जाता है। इस समय के भीतर आप तीनों प्रश्नों का सही हल ढूंढ़ राज-दरबार में चौथे दिन आकर देवदूत को बता दें।"

घर लौटकर पुरोहित ने अपनी पत्नी को सब बात बताई और एकान्तवास ले लिया। अब उसने ज्ञान की सभी पुस्तकें टटोला, फिर अपने संचित ज्ञान और विवेक से उन प्रश्नों को तोला। बात किसी भांति नहीं सुलझी। तीसरे दिन व्याकुल होकर घबराहट में पलंग पर बिस्तर लगा सोने की तैयारी कर रहे थे कि पत्नी ने कहा, "यह कार्य इस तरह हल नहीं होगा।"

फिर भी उनकी समस्या उस पंचायत के निर्णय से कहाँ सुलझ पाई थी ? दोपहर हो आया था। कड़ी धूप पड़ने के कारण वे पीपल के पेड़ के नीचे बने हुये एक चबूतरे पर बैठ गए। पास लगी हुई प्याऊ से उन्होंने पानी पिया। उस चबूतरे पर कई लोग सुस्ता रहे थे। वहीं उन्होंने दो व्यक्तियों को आपस में बातें करते हुये सुना। एक कुछ उत्तेजित होकर कह रहा था, "मित्र, आज से अब हमारी मित्रता का अन्त समझ लो। तुम कान के बड़े कच्चे हो। जो सुनते हो वह पचा नहीं पाते। उसे सबके आगे उगल डालते हो। पात्र-कुपात्र का ध्यान तुमको नहीं रहता है। तुमको मैंने बताया था कि चाँदी का भाव मंदा होनेवाला है जिसके कारण नगर-सेठ का दिवाला पिट जायेगा। तुमने हर एक व्यक्ति को यह बात बतला दी। नतीजा यह हुआ कि वह बात सबको ज्ञात हो गई और व्यर्थ ही सेठ मेरा शत्रु बन गया।"

दूसरे ने उससे विनती की कि वह इस प्रकार दुबारा विचार करे, पर वह अस्वीकार कर बोला, "एक नादान दोस्त से एक दाना दुश्मन भला होता है।"

यह नसीहत भी पुरोहित ने गाँठ बाँध ली। किन्तु जिन सवालों का हल वे ढूंढ़ रहे थे, उनमें से एक भी नहीं सुलझा। पत्नी ने झूठ ही कहा था कि सब नगरवासी उन नरमुंडों की चर्चा कर रहे होंगे। यहाँ तो सब अपनी-अपनी डफली बजा रहे हैं। संध्या बीत चुकी थी और रात्रि हो आई। अब सब नागरिक सो गये थे। चारों ओर निपट अन्धकार और सन्नाटा छा गया। जब कि वे अभी तक उसी भाँति निरुद्देश्य नगर का भ्रमण कर रहे थे।

तभी उन्होंने देखा कि एक गली के मोड़ पर कुछ चोर आपस में बातें कर किसी मसले को सुलझा रहे हैं। सरदार कह रहा था—"यह व्यक्ति बिलकुल निकम्मा निकला है। यह गोपनीय भेद तक नहीं छुपा सकता है। यह स्वार्थी और चुगलखोर है। यदि यह कोतवाल को सब भेद की बात न बताता तो हमारे इतने आदमी न पकड़े जाते। अब इस व्यक्ति का वध करने में ही दल का हित है। तुम लोग इसका तुरन्त वध कर दो। यह नीच व्यक्ति जितनी जल्दी धरती से विदा होगा उतना ही उसका उपकार होगा।"

पुरोहित चुपचाप आगे बढ़ गया। यदि अब तक उन्होंने सही जन-संपर्क रखा होता तो मानव-गुण को समझने वाला ज्ञान प्राप्त होता। इससे राज्य की भलाई होती। वे तो दरबार में रहकर अपने दंभ में ही फूले रह गये। इसीलिये उनको कल प्रायश्चित करना होगा। वे सूली पर चढ़ाए जायेंगे।

—उषा का उदय हो रहा था। उन्होंने सोचा कि जो सीखें अब तक उन्होंने प्राप्त की है, उसे पत्नी को बता कर वे उससे अन्तिम विदा लेंगे। हजारों नागरिकों के आगे सूली पर चढ़ने से अच्छा यह होगा कि वे नगर से दूर किसी तालाब में डूब मरें। वे दुःखी मन घर पहुँचे और पत्नी को सब बातें बताकर विदा माँगी।

इस पर पत्नी खिलखिलाकर हँस पड़ी। वह बोली, "वे खोपड़ियाँ तीन मानवीय गुणों का प्रतीक है, जो कि आप स्वयं जनता से सीखकर आए हैं।"

पत्नी ने सारी भेद की बातें बता दी। वे संतोष के साथ चुपचाप सो गये।

—प्रातःकाल राजा का सिपाही पुरोहित के दरवाजे पर आ धमका। पंडितजी ने बड़े ताव के साथ उसे फटकारते हुए कहा, "महाराज से कह देना कि पूजा-पाठ से निपटकर मैं शीघ्र ही उनकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

उधर दरबार में बड़ी भीड़ लगी हुई थी। आज राज्य के भाग्य का निपटारा होने वाला था! देवदूत वहाँ खड़ा था। वे तीनों खोपड़ी एक ऊँचे स्थान पर रखी गई थीं। सब लोग उत्सुकता से पुरोहित जी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

पुरोहित के वहाँ पहुँचते ही सब उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगे। उन्होंने राजा का अभिवादन किया और तीनों खोपड़ियों के पास पहुँच गये। अपनी जेब से एक सोने की सलाई निकालकर एक खोपड़ी के कान में डालकर हिलाई और कहा, "महाराज, यह व्यक्ति बहुत गम्भीर है। इसका भेद नहीं मिलता है, इसका मूल्य अमूल्य है।

अब दूसरी खोपड़ी के कान में सलाई डालकर हिलाई-डुलाई, तो वह मुँह से निकल आई। पुरोहित बोले, "यह व्यक्ति कान का कच्चा है, जो कान से सुनता है वह मुँह से कह डालता है। इसका मूल्य दस हजार तक हो सकता है।"

तीसरे नरमुंड को उठाकर उसके कान में सलाई डालते ही सलाई नाक, मुँह, आँख. आदि सभी से बाहर निकल आई तो पुरोहित बोले, "यह व्यक्ति किसी काम का नहीं है। यह कोई भेद नहीं छुपा सकता है। यह चुगलखोर और कान का कच्चा है।"

देवदूत सब सुनकर इन्द्र के पास पहुँचा। वे उन सभी को सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने राजा को सन्देश भेजा कि राजा के दरबार में बड़े निपुण विद्वान् हैं, इसीलिए उसका कल्याण होगा।

◆